

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये



लक्ष्मीजीका स्वयंवर



भगवान् सूर्य

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कल्याण

यज्जापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तक्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता ।
यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम् ॥

वर्ष
९३

गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, नवम्बर २०१९ ई०

संख्या
११

पूर्ण संख्या १११६

आदिदेव भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः ॥

× × × × ×
प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम् । दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः । स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः ॥
वेद्यं वेदविदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः ॥

[ब्रह्माजी कहते हैं—] भगवन्! तुम आदिदेव हो । ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो ।

सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो । तुम्हीं देवाधिदेव दिवाकर हो । ××× तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश बिखेरनेवाला और देवेश्वरोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे जानेयोग्य है, उसको हमारा नमस्कार है । देवता और सिद्ध जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अत्रि और पुलह आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अत्यन्त अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम है । सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप वेदवेत्ता पुरुषोंके द्वारा जाननेयोग्य, नित्य और सर्वज्ञानसम्पन्न है, उसको हमारा नमस्कार है । [ब्रह्मपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, नवम्बर २०१९ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या	विषय	पृष्ठ-संख्या
१- आदिदेव भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार	३	१५- माँ विन्ध्यवासिनीकी स्तुति (डॉ० महेशजी पाण्डेय 'बजरंग') २३	
२- कल्याण	५	१६- भाग्य-पुरुषार्थ-विवेक (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)	२४
३- लक्ष्मीजीका स्वयंवर [आवरणचित्र-परिचय]	६	१७- विश्वासघातका दण्ड	२७
४- शरणागति और प्रेम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७	१८- भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त	२८
५- करने-न करनेका अभिमान छोड़ दो (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)	१०	१९- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)	३०
६- ईश्वर-चर्चा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ...	१२	२०- ईश्वराराधना और धार्मिकता क्या है? (श्रीगजाननजी पाण्डेय) ..	३१
७- नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)	१४	२१- ज्योति प्रज्वलित हो गयी (श्रीबलविन्दरजी 'बालम')	३२
८- महर्षि रमणकी मूक पशु-पक्षियोंके प्रति करुणा-भावना (श्रीशिवकुमारजी गोयल)	१५	२२- अनुकूलता और प्रतिकूलतामें प्रेमी भक्तकी अनुपम साधना (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)	३४
९- शरीर नहीं, परमात्मा अपने हैं [साधकोंके प्रति—] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१६	२३- दोष भूलका परिणाम है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३७
१०- श्रीरामचरितमानस—एक महान् कविकी अद्भुत कृति (आचार्य डॉ० श्रीकेशवराजजी शर्मा)	१८	२४- दुष्कर्म पराभव, अपमान और दुःखका कारण	३८
११- शत्रुको मित्र बना लेना ही बुद्धिमानी है	१९	२५- गोमाताद्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ	३९
१२- पतनके कारण	२०	२६- औघड़ बाबा श्रीशंकर स्वामी (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)	४१
१३- जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासजीकृत अध्यादश पद] ...	२१	२७- साधनोपयोगी पत्र	४२
१४- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)	२३	२८- ब्रतोत्सव-पर्व [मार्गशीर्षमासके व्रतपर्व]	४४
		२९- ब्रतोत्सव-पर्व [पौषमासके व्रतपर्व]	४५
		३०- कृपानुभूति	४६
		३१- पढ़ो, समझो और करो	४७
		३२- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- लक्ष्मीजीका स्वयंवर	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवान् सूर्य	(")	मुख-पृष्ठ
३- लक्ष्मीजीका स्वयंवर	(इकरंगा)	६
४- द्रौपदीका गिरना	(")	२०
५- औघड़ बाबा श्रीशंकर स्वामी	(")	४१
६- धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीका दावानलसे दग्ध होना	(")	५०

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

विदेशमें Air Mail }
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3,000)
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000)

{ Us Cheque Collection
{ Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : gitapress.org

e-mail : kalyan@gitapress.org

☎ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें ।

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें ।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें ।

कल्याण

याद रखो—जगत्में जितने भी चराचर प्राणी हैं, सबके अन्दर आत्मा तथा अन्तर्यामीरूपसे भगवान् विराजमान हैं। भगवान् ही उन सब रूपोंमें प्रकट हैं। अतएव उनकी सेवा करना, उन्हें सुख पहुँचाना और उनका हित करना तुम्हारा धर्म है।

याद रखो—यदि तुम जगत्के प्राणियोंसे द्वेष-द्रोह करते हो, कठोर वचन कहकर उन्हें मर्म-पीड़ा पहुँचाते हो, क्रोध तथा अभिमानके वश होकर उनका अपमान-तिरस्कार करते हो एवं कामना और लोभके फंदेमें पड़कर उनका स्वत्व-हरण करते हो तो तुम्हारे बाहरी पूजन और दानसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे।

याद रखो—यदि तुम छल-कपट करके लोगोंका धन लूटते हो, मीठे बोल बोलकर दूसरोंको धोखा देते हो, अपने अधिकार तथा शक्तिका प्रयोग करके गरीबों और असहायोंको दबाते हो तो तुम्हारे बाहरके आडम्बरसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे।

याद रखो—तुम यदि अनाथों और असमर्थोंको डराकर या फुसलाकर अनुचित लाभ उठाते हो; सत्ता, वैभव और पदके प्रभावसे गरीब पड़ोसियोंके घर-द्वार छीनते हो एवं अधिकारियोंके साथ षड्यन्त्र करके सरल हृदयके लोगोंको ठगते हो तो तुम्हारी पद-मर्यादा, नेतागिरी या थोथे धर्मात्मापनसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे।

याद रखो—यदि तुम विधवाओंके धनको धोखेसे हड़प जाते हो, उनका अपमान-तिरस्कार करते हो, उनके साथ बुरा व्यवहार करते हो और उनको मीठी-मीठी बातोंमें फँसाकर धर्मच्युत

करते हो, तो भगवान् तुम्हारे तिलक-मालाओं, खादीके कपड़ों या सेवकके स्वाँगसे प्रसन्न नहीं होंगे।

याद रखो—यदि तुम अपने मनमें दम्भ-दर्प, वैर-विरोध, क्रोध-हिंसा, अभिमान-गर्व, छल-कपट और राग-द्वेष आदिको भी रखते हो और ऊपरसे साधु बने रहते हो तो भगवान् तुम्हारी उस कृत्रिम साधुतासे और तुम्हारी उपदेशभरी शास्त्रवाणीसे प्रसन्न नहीं होंगे।

याद रखो—भगवान्की प्रसन्नताके लिये किसी बाहरी आडम्बरकी, वेशभूषाकी, बोलचालके ढंगकी, उपदेश-आदेश देनेकी, किसी प्रकारका स्वाँग बनानेकी और साधुका वेश धारण करनेकी आवश्यकता नहीं है। भगवान्की प्रसन्नताके लिये तो चाहिये—निर्मल मन, जिसमें अहिंसा, सत्य, अलोभ, सन्तोष, दया, अस्तेय, अमानिता, अदम्भिता, वैराग्य, प्रेम, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, नम्रता, उदारता, मधुरता, गम्भीरता, धीरता, सहिष्णुता, शुचिता, श्रद्धा, धर्मभीरुता, क्षमा और ऋजुता आदि दैवी गुण भरे हों और सबसे प्रधान रूपमें चाहिये—भगवान्के प्रति मनमें अहैतुकी विशुद्ध भक्ति।

याद रखो—मानव-जीवन बहुत थोड़े कालके लिये प्राप्त हुआ है और प्राप्त हुआ है भगवान्को प्रसन्न करके उनको प्राप्त करनेके लिये। यदि यह कार्य इस जीवनमें न बन पड़ा और विषय-विलासमें ही जीवन बीत गया तो उससे केवल जीवनकी व्यर्थता ही नहीं होगी, महान् पापका संग्रह भी होगा, जो अनन्तकालतक दुःख देता रहेगा। 'शिव'

लक्ष्मीजीका स्वयंवर



अमृतकी प्राप्तिके लिये देवताओं और दैत्योंने जब क्षीरसागरका मन्थन किया तो उसमेंसे सर्वप्रथम हालाहल विष उत्पन्न हुआ। उस लोकसंहारकारी कालकूट विषको भगवान् शिवने स्वयं अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार भगवान् शंकरकी बड़ी भारी कृपा होनेसे देवता, असुर, मनुष्य तथा सम्पूर्ण त्रिलोकीकी उस समय कालकूट विषसे रक्षा हुई।

तदनन्तर जब पुनः समुद्र-मन्थन आरम्भ हुआ। तब समुद्रसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये अमृतमयी कलाओंसे परिपूर्ण चन्द्रदेव प्रकट हुए। इसके बाद पुनः मन्थन प्रारम्भ करनेपर देवकार्योंकी सिद्धिके लिये साक्षात् सुरभि (कामधेनु) प्रकट हुई। उन्हें काले, श्वेत, पीले, हरे तथा लाल रंगकी सैकड़ों गौएँ घेरे हुए थीं। देवताओं और दैत्योंने भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये वे सब गौएँ ऋषियोंको दान कर दीं। तत्पश्चात् सब लोग बड़े जोशमें आकर क्षीरसागरको पुनः मथने लगे। तब समुद्रसे कल्पवृक्ष, पारिजात, आम्र और सन्तान—ये चार दिव्य वृक्ष प्रकट हुए। उन सबको एकत्र रखकर देवताओंने पुनः बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। इस बारके मन्थनसे रत्नोंमें सबसे उत्तम रत्न कौस्तुभ प्रकट हुआ, जो सूर्यमण्डलके समान परम कान्तिमान् था। देवताओंने

उसे भगवान् विष्णुकी सेवामें भेंट कर दिया। तदनन्तर देवताओं और दैत्योंने पुनः समुद्रको मथना आरम्भ किया। अबकी बार उस मथे जाते हुए समुद्रसे उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न प्रकट हुआ। उसके बाद गजजातिमें रत्नभूत ऐरावत प्रकट हुआ। उसके साथ श्वेतवर्णके चौंसठ हाथी और थे। इसके बाद पुनः मन्थन करनेपर समुद्रसे मदिरा, भाँग, काकड़ासिंगी, लहसुन, गाजर, अत्यधिक उन्मादकारक धतूर तथा पुष्कर आदि बहुत-सी वस्तुएँ प्रकट हुईं। तत्पश्चात् वे श्रेष्ठ देवता और दानव पुनः पहलेकी ही भाँति समुद्र-मन्थन करने लगे। अबकी बार समुद्रसे सम्पूर्ण भुवनोंकी एकमात्र अधीश्वरी दिव्यरूपा देवी महालक्ष्मी प्रकट हुई, जिन्हें ब्रह्मवेत्ता पुरुष आन्वीक्षिकी (विचार-विद्या) कहते हैं। इन्हें ही मूल-विद्या, वाणी, ब्रह्मविद्या, ऋद्धि, सिद्धि, आज्ञा, आशा, वैष्णवी, माया और भगवान्की 'योगमाया' भी कहते हैं। देवताओंने देखा, देवी महालक्ष्मीका रूप परम सुन्दर है। उनके मनोहर मुखपर स्वाभाविक प्रसन्नता विराजमान है। हार और नूपुरोंसे उनके श्रीअंगोंकी बड़ी शोभा हो रही है। मस्तकपर छत्र तना हुआ है, दोनों ओरसे चँवर डुल रहे हैं; जैसे माता अपने पुत्रोंकी ओर स्नेह और दुलारभरी दृष्टिसे देखती है, उसी प्रकार सती महालक्ष्मीने देवता, दानव, सिद्ध, चारण और नाग आदि सम्पूर्ण प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात किया। माता महालक्ष्मीकी कृपा-दृष्टि पाकर सम्पूर्ण देवता उसी समय श्रीसम्पन्न हो गये और राज्याधिकारीके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देने लगे।

तदनन्तर देवी लक्ष्मीने भगवान् मुकुन्दकी ओर देखा । उनके श्रीअंग तमालके समान श्यामवर्ण थे । कपोल और नासिका बड़ी सुन्दर थी । वे परम मनोहर दिव्य शरीरसे प्रकाशित हो रहे थे । उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था । भगवान्‌के एक हाथमें कौमोदकी गदा शोभा पा रही थी । भगवान् नारायणकी उस दिव्य शोभाको देखते ही लक्ष्मीजी आश्चर्यचकित हो उठीं और हाथमें वनमाला ले सहसा हाथीसे उतर पड़ीं । देवीने वह सुन्दर वनमाला परमपुरुष भगवान् विष्णुके कण्ठमें पहना दी और स्वयं उनके वाम भागमें जाकर खड़ी हो गयीं ।

शरणागति और प्रेम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

भगवान्‌की शरणमें रहनेसे साधकको बड़ी शक्ति मिलती है। फिर उसमें दुर्गुण-दुराचार रह ही नहीं सकते। जिस प्रकार सूर्यकी सन्निधिमें रहनेवालेके पास शीत और अन्धकार नहीं फटक सकते, उसी प्रकार जिसके हृदयमें श्रीभगवान्‌ विराजमान हैं, उसके पास दुर्गुण नहीं आ सकते। यही नहीं, जिस तरह सूर्यके आश्रयसे अनायास ही गर्मी और प्रकाशका सुख प्राप्त होता है, वैसे ही भगवान्‌के आश्रयसे भी स्वतः ही सद्गुण और सदाचारकी वृद्धि होने लगती है। भगवदाश्रयका सुदृढ़ निश्चय होनेपर ही ऐसा होता है। ऐसे शरणागत भक्तको यदि कभी किसी दुर्गुणसे बाधा होगी भी तो उसके 'हे नाथ! हे नाथ!' ऐसा पुकारते ही वह दुर्गुण दूर चला जायगा। यदि निर्भरताकी कमीके कारण कभी ऐसा जान पड़े कि हमारे हृदयमें कोई कुविचार प्रवेश करना चाहता है, तो हमें कातर स्वरमें 'हे नाथ! हे नाथ!' इस प्रकार पुकारना चाहिये। प्रभुका आश्रय लेनेसे चिन्ता, भय, शोक एवं सब प्रकारके दुर्गुण-दुराचार मूलसहित नष्ट हो जाते हैं तथा सद्गुण, सदाचार एवं शान्ति आदिका स्वतः ही विकास होता है।

इन सारे गुणोंकी प्राप्ति भगवच्छरणागतिसे हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या, ये सब तो भगवान्‌के प्रेमियोंके सहवाससे भी प्राप्त हो सकते हैं। जो पुरुष भगवत्कृपाके रहस्यको समझ जाता है, उसमें दया, गम्भीरता, शान्ति और सरलता आदि सद्गुण स्वयं ही आ जाते हैं। उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ने लगता है तथा दृष्टिमें सर्वत्र समताका साम्राज्य छा जाता है। हमलोग भगवद्दर्शनके लिये बहुत उतावले रहते हैं; परन्तु भगवान्‌ कभी अपात्रको दर्शन नहीं देते। यदि हम पात्र होंगे तो हमारे सामने प्रभु आप ही प्रकट हो जायँगे। इसके लिये अनन्य प्रेमकी आवश्यकता है। जो सच्चे प्रेमी होते हैं, वे यदि कहीं भगवच्चर्चा या भगवन्नामकीर्तन सुनते हैं तो उनकी बड़ी विचित्र अवस्था हो जाती है। जैसे कामिनीके नूपुरोंकी झनकार सुनकर कामी पुरुषके हृदयमें काम जाग्रत् हो उठता है, वैसे ही यदि प्रेमीके कानोंमें

भगवन्नामकीर्तनकी ध्वनि पड़ जाती है तो वह प्रेममें विभोर हो जाता है। वह यदि किसी भगवद्रसिक महापुरुषके दर्शन कर लेता है तो उसके नेत्र गुलाबके फूलकी तरह खिल उठते हैं और उनसे झर-झर अश्रुपात होने लगता है। हमलोग तो प्रेमका केवल नाम लेते हैं, असली प्रेम तो दूसरी ही चीज है। वह सर्वथा अलौकिक और अनिर्वचनीय है। उसतक मन और वाणीकी पहुँच नहीं है। बुद्धि भी उसका स्पर्श तो करती है, परन्तु पूरा-पूरा पता नहीं लगा सकती।

जो एक बार प्रेमसे घायल हो जाता है, उसपर कोई भी औषध काम नहीं करती। हमलोगोंको निरन्तर प्रेमकी वृद्धि करनी चाहिये—यहाँतक कि उससे बाध्य होकर प्रभुको आना पड़े। प्रेमीको प्रभु त्याग नहीं सकते। प्रेमकी लोग ठीक-ठीक कदर नहीं करते। प्रेमियोंकी बड़ी आवश्यकता है। प्रेमी बहुत कम मिलते हैं—प्रायः मिलते ही नहीं। सर्वस्व समर्पण करनेपर यदि एक रत्तीभर प्रेम मिले तो सर्वस्व दे डालना चाहिये। सच्चा प्रेमी ऐसा ही करता है। रत्नका वास्तविक मूल्य जौहरी ही जानता है। यदि भीलनीके सामने एक लाख रुपयेका हीरा रखा जाय तो वह उसके बदलेमें चार पैसे भी देना नहीं चाहेगी, कहेगी कि यह काँचका टुकड़ा मेरे किस कामका। परन्तु जौहरी उसके लिये खुशी-खुशी अपना सर्वस्व दे डालेगा। इसी प्रकार प्रेमका मूल्य भी कोई विरले ही जानते हैं। प्रेमके लिये जो जितना कम मूल्य देना चाहते हैं, वे प्रेमके तत्त्वको उतना ही कम जानते हैं, प्रेम तो स्वार्थत्यागसे ही मिलता है। सच्चे प्रेमी सिरकी बाजी लगाकर भी प्रभुका प्रेम प्राप्त करते हैं।

प्रेमी लोग सर्वदा वही किया करते हैं, जिससे भगवान्‌की प्रसन्नता हो। यदि उन्हें कोई भगवान्‌का प्यारा मिलता है तो उसके भजन-ध्यानादिमें सहायक होकर वे बदलेमें प्रभुकी प्रसन्नता प्राप्त करते हैं। जब दो प्रेमी मिलते हैं तो एक अपूर्व आनन्दकी बाढ़-सी आ जाती है। ऐसे प्रेमसम्मेलनको देखकर प्रभु भी उनके हाथ बिक

अतः यदि भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है तो वास्तविक त्याग कीजिये। हृदयसे अपना सर्वस्व प्रभुको समझिये। प्रभुके लिये ही सारे काम कीजिये। ममता, अहंता और आसक्तिको जड़से उखाड़ डालिये। इस प्रकार यदि आपकी सारी चेष्टाएँ प्रभुके ही लिये होंगी और आप अपने तन, मन, धन सबकी सार्थकता प्रभुकी प्रसन्नतामें ही समझेंगे, प्रभुकी प्रसन्नताके लिये उनके त्यागमें तनिक भी संकोच नहीं करेंगे तो प्रभुको विवश होकर आपकी खुशामद करनी होगी। ऐसी बात होनेपर भी आपको तो प्रभुकी ही प्रसन्नतामें प्रसन्न रहना चाहिये, उनसे अपनी खुशामद करानेकी इच्छा रखना भी एक प्रकारका स्वार्थ ही है।

करने-न करनेका अभिमान छोड़ दो

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

बीसवीं शताब्दीकी घटना है। एक बड़े शहरमें एक बड़े प्रतिष्ठित धनी निवास करते थे। उनके चित्तमें बड़ा वैराग्य था, भगवान्‌के भजनमें बड़ी रुचि थी। वे सोचते रहते थे कि कब वह अवसर मिलेगा, जब सबकी चिन्ता छोड़कर मैं भजनमें ही लग जाऊँगा। उनके सन्तान नहीं थी। एक भतीजा था, जिसके पढ़ाने-लिखानेकी जिम्मेदारी सेठजीपर ही थी। वे उसको योग्य बनाकर भजनमें लगाना चाहते थे।

कुछ दिनोंमें पढ़-लिखकर सेठजीका भतीजा योग्य हो गया। सेठजीने व्यापारका सारा काम-काज उसे सँभला दिया और अपना विचार प्रकट किया कि मैं तो अब व्रजमें रहकर भगवान्‌का ही भजन करूँगा।

भतीजेने पूछा—‘चाचाजी, इस घरमें, व्यापारमें, रुपयेमें और भोगोंमें जो आनन्द है, भजनमें उससे अधिक आनन्द है क्या?’

चाचाजी—‘इसमें क्या सन्देह है, बेटा! हमारा व्यापार, भोग और सुख तो अत्यन्त अल्प है। संसारके त्रैकालिक सुखोंको और मोक्ष-सुखको भी यदि एकत्र करके एक पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर भजनका लेशमात्र सुख रखा जाय, तो भी वह लेशमात्र सुख ही अधिक होगा। और तो क्या कहूँ, बेटा? भजनमें जो दुःख होता है, वह भी संसारके सब सुखोंसे श्रेष्ठ है।’

भतीजा—‘चाचाजी ! जब भजनमें इतना सुख है, तब मुझे इस दुःखरूप व्यापारमें लगाकर आप अकेले क्यों उस सुखका उपभोग करने जा रहे हैं ? जिसे आप दुःख समझते हैं, उसमें मुझे डाल रहे हैं और आप सुखमें जा रहे हैं, भला, यह कहाँका न्याय है ? मैं भी आपके साथ चलूँगा।’

चाचाजी—‘बेटा! मैं तो चाहता हूँ कि संसारके सभी लोग भगवान्में लग जायँ। मुझे कई बार इस बातका दुःख भी होता है कि लोग ऐसा सुखमय भजन छोड़कर प्रपंचोंमें क्यों फँसते हैं। परंतु संसारका अनुभव

किये बिना इसके दुःखोंका ज्ञान नहीं होता। तुम अभी नवयुवक हो। तुम कुछ दिनोंतक संसारके व्यवहारोंमें रहकर इसके सुख-दुःखोंको देख लो, फिर तुम्हारी रुचि हो तो भजनमें लग जाना।'

भतीजा—‘चाचाजी! आपकी बात मुझे जँचती नहीं है। मैं सोचता हूँ कि जिस व्यापार आदिमें लगे रहकर आपने अपनी इतनी उम्र बितायी है, उसका अनुभव आपसे अधिक मुझे कब होगा! जब आपका अनुभव इतना प्रत्यक्ष है, मेरी आँखोंके सामने है, तब फिर उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये इतना सुखद भजन छोड़ देना कहाँतक उचित है? इसलिये मैं भजनके लिये अवश्य चलूँगा। आप साथ न रखेंगे तो मैं अकेला ही चला जाऊँगा।’

भतीजेका दृढ़ निश्चय देखकर सेठजीको प्रसन्नता हुई। अपनी सारी सम्पत्तिका उन्होंने ट्रस्ट बना दिया, जिससे दीन-दुखियोंकी सेवा हुआ करे। दोनोंने समस्त वस्तुओंका त्याग करके व्रजकी यात्रा की। रास्तेमें चाचाजीने अपने भतीजेसे बातचीत करते हुए कहा— ‘बेटा! ऐसी बात नहीं है कि घरमें भगवान्का भजन हो ही नहीं सकता; हो तो सकता है, होता है। मेरे सामने संसारके व्यवहार, व्यापारमें बहुत बड़ी कठिनाई थी। आजकल व्यापारकी प्रणाली इतनी कलुषित, इतनी गन्दी हो गयी है कि बड़े-बड़े सत्पुरुषोंका व्यवहार भी पूर्णतः शुद्ध नहीं होता। जहाँ दूसरोंसे सम्बन्ध रखना पड़ता है, वहाँ कुछ-न-कुछ उनके सम्बन्धका ध्यान रखना ही पड़ता है। इसलिये कैसा भी सज्जन क्यों न हो, व्यवहारके क्षेत्रमें उसे विवश होकर अपराध करना पड़ता है। सम्भव है दो-एक इसके अपवाद भी हों। परंतु है यह बहुत कठिन। अवश्य ही यह व्यापारका दोष नहीं है, किंतु कलियुगमें ऐसे व्यक्तियोंकी ही भरमार है। इसीसे जो लोग अपने ईमान और सच्चाईकी रक्षा करना चाहते हैं, अपने अन्तःकरणको शुद्ध रखना चाहते

दण्डवत् करके जब उन दोनोंने आँखें खोलीं, तब वहाँसे श्रीजी अन्तर्धान हो चुकी थीं। वे चाचा-भतीजा जीवनभर मस्त देखे गये।

ईश्वर-चर्चा

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भगवान्‌के विषयमें भ्रम और शंका तो भगवान्‌ ही दूर करते हैं। उनकी कृपाके प्रकाशसे जब मिथ्या-तर्कका अन्धकार मिट जाता है और ज्ञानका आलोक उदय होता है, तब भ्रम और अज्ञानका तिमिर अपने-आप हट जाता है।

एक बात और ध्यान देनेयोग्य है। जहाँतक प्रत्यक्ष प्रमाणकी गति है, वहींतक मनुष्य साधिकार कोई बात कह सकता है। जहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धिकी भी पहुँच नहीं हो पाती, उस तत्त्वका निर्णय मनुष्य निरे तर्क और युक्तिके बलपर नहीं कर सकता। उसके लिये शास्त्र और अनुभवी संतकी शरणमें जानेकी आवश्यकता होती है। भगवान्‌ भी यही कहते हैं—

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।

(श्रीमद्भगवद्गीता)

जिसने शम, दम आदि साधनोंका अनुष्ठान किया है, सद्गुरुकी सेवा की है, सत्संगका दीर्घकालतक सेवन किया है, शास्त्रोंका अनुशीलन और एकाग्रतापूर्वक भगवान्‌की आराधना की है, वही भगवत्कृपासे यथार्थ तत्त्वका अनुभव करके कह सकता है कि कौन भ्रममें है और कौन नहीं? शेष सब लोग तो स्वयं सन्देह और भ्रममें ही रहते हैं। फिर भी इस भ्रम-निवारणके यही सब उपाय हैं। परस्पर समझना-समझाना और सन्देह हो तो उसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे पूछकर निवृत्त कर लेना—इसीसे तत्त्वका बोध हुआ करता है—‘वादे वादे जायते तत्त्वबोधः’ यह प्रसिद्ध है।

वस्तुतः सत्य तो यह है कि ईश्वरकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जैसे विद्युत्-शक्तिके बिना मशीन नहीं चल पाती, उसी प्रकार ईश्वरीय सत्ता एवं प्रेरणाके बिना जगत्का एक अणु भी कार्य-क्षम नहीं हो सकता। हम तभी किसीको देखते हैं, जब आँख काम करती है। नेत्रमें जो देखनेकी शक्ति है, वह किसकी है? ईश्वरकी ही है; इसीलिये शास्त्र उसे ‘चक्षुषश्चक्षुः’ (नेत्रका भी नेत्र) कहते हैं। इसलिये संसारमें यदि एक पत्ता भी हिलता है तो उसके हलन-चलनमें ईश्वरकी

शक्ति या प्रेरणा ही काम करती है।

कुछ लोग कहते हैं कि अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य सब ईश्वर ही कराता है, वास्तवमें यह आधा ही सत्य है। पुण्य ईश्वर कराता है, यह तो समझमें आनेकी बात है; क्योंकि ईश्वर पुण्यमय है। जो जैसा होता है, उससे उसीकी प्रेरणा मिलती है; परंतु ईश्वर बुरा या पाप भी कराता है, यह किसी भी विचारशीलको मान्य नहीं हो सकता। सूर्यकी किरणें प्रकाश फैलाती हैं—यह तो सबके विश्वासकी बात है, परंतु सूर्य उगनेपर अन्धकार बढ़ जाता है—यह सम्भवतः कोई भी माननेको तैयार नहीं होगा। अग्नि शीतल और चन्द्रमा उष्ण है—यह उन्मत्त प्रलाप है। जिसका नाम, रूप, लीला, धाम—सब कुछ पुण्यमय है, वह पाप क्यों करायेगा?

यदि कहें उसकी इच्छाके बिना पत्ता भी नहीं हिलता, तब पाप कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि हलन-चलन आदि चेष्टाएँ ईश्वरीय शक्तिसे होती हैं। पापीके शरीर और इन्द्रिय भी ईश्वर-शक्तिसे ही हिलते या चेष्टा करते हैं तथा पुण्यात्माके शरीर एवं इन्द्रिय भी ईश्वरशक्तिसे ही अपने कार्यमें समर्थ होते हैं। यह चेष्टामात्र ही ईश्वरीय-शक्तिसे होती है। एक ही प्रकारकी चेष्टा दो मनुष्य करते हैं; एककी चेष्टा पाप बन जाती है और दूसरेकी पुण्य। पापी और पुण्यात्मा दोनों अपने नेत्रोंसे देखते हैं; परंतु एककी दृष्टि शुद्ध है, वह सबमें सर्वत्र भगवान्‌का भाव रखकर देखता है। और दूसरा रूप, लावण्य, कटाक्ष और हाव-भावपर गन्दी दृष्टि रखकर परस्त्रीका सतीत्व लूटना चाहता है। भाव-शुद्धिके कारण पहलेकी दर्शनरूप चेष्टा पुण्य है और भावकी अशुद्धिसे दूसरेकी वही चेष्टा पाप है। चेष्टामें ईश्वरीय शक्ति काम करती है और उसी चेष्टाको पुण्य एवं पापमय बनानेमें मनुष्यका आन्तरिक भाव काम करता है। ईश्वर पुण्यमय हैं, अतः सर्वत्र ईश्वर-दर्शन करनेवाला पुण्यात्मा है और धर्मविरुद्ध ‘काम’ पापरूप है, अतः उसमें आसक्त होनेवाला पापात्मा है। इसी

अर्थात् हे 'अर्जुन! मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।'

नाम-स्मरण

(समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

नाम-स्मरणसे अपने अवगुण समझमें आयेंगे

संसारमें परमार्थ पानेके लिये चाहे जितने साधन होंगे, लेकिन उन सभी साधनोंमें पहला कदम अपने अवगुणोंको पहचानना है। जैसे-जैसे हमारा साधन बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हमें अपने भीतरके अवगुण दिखायी देने लगते हैं। आगे चलकर उन अवगुणोंका इतना बड़ा पहाड़ खड़ा हो जाता है कि हमें लगता है, हे भगवान्! जब मैं इतने अवगुणोंसे भरा हुआ हूँ तो मुझे तुम्हारे दर्शन हों, यह इच्छा भी मैं कैसे करूँ? इतने पहाड़-जैसी अवगुणोंकी राशियोंसे मुझे तुम्हारे दर्शन हों, क्या यह त्रिकालमें भी सम्भव है? साधन शुरू करनेके पहले क्रोधी मनुष्य कभी अपने क्रोधके लिये लज्जित नहीं होता था, बल्कि वह तो यह भी नहीं जानता था कि क्रोध करना अवगुण है। वह तो कहता था कि 'व्यवहारमें रोब जमानेके लिये इतना क्रोध तो आवश्यक है; इसके बिना कैसे चलेगा? एक साधकने मुझसे कहा—'इन दिनों मुझे गुस्सा आने लगा है।' लेकिन सच बात तो यह थी गुस्सा अब नहीं आने लगा था, गुस्सा तो उसे पहलेसे ही आता था। लेकिन साधन प्रारम्भ करनेके बाद उसे उसका भान होने लगा था। या यों कहिये कि गुस्सा नहीं करना चाहिये, गुस्सा बुरा होता है, यह उसकी समझमें आने लगा था।

विवाहयोग्य अवस्थावाला एक लड़का था, उसने कई लड़कियाँ देखीं, लेकिन एक भी लड़की पसन्द नहीं आयी। उसके माँ-बापने उससे कहा—'तुम्हें जब लड़की पसन्द आयेगी, तब हम आगेकी बातें करेंगे। वे लड़की देखनेके लिये उसके साथ नहीं जाते थे। उस लड़केकी एक बड़ी बहन थी, वह लड़की देखनेके लिये जाते वक्त भाईके साथ जाती थी। एक बार लड़की देखकर आनेके बाद बहनने उससे पूछा—'कैसी थी लड़की?' इसपर वह बोला—'पसन्द नहीं आयी।' बहन बड़ी चतुर थी, उसने उसके मुँहके सामने आईना

धर दिया और पूछा—'तुम्हारे इस प्रतिबिम्बके जोड़में लड़की कैसी लगेगी?' तब कहीं उसे अपना और लड़कीका रूप ध्यानमें आया। तब वह बोला—'लड़की सुन्दर है, बहुत अच्छी है।' मतलब यह कि जबतक हमें अपने खुदके सच्चे दर्शन नहीं होते, तबतक हमें दूसरोंके अवगुण ही दिखायी देते हैं। हमें दूसरोंमें जो अवगुण दिखायी देते हैं, उनके बीज हममें ही होते हैं, यह बात हमारे ध्यानमें आनी चाहिये और इसलिये हमें पहले दूसरोंके अवगुण देखनेकी वृत्ति छोड़नी चाहिये। दूसरोंके अवगुण देखना हमेशाका व्यवहार है, परमार्थ नहीं है। जो सच्चा परमार्थी होता है, वह आत्म-परीक्षा करता रहता है। उसे दूसरोंके अवगुण दिखायी नहीं देते; क्योंकि उसे अपने अवगुणोंके ही इतने दर्शन होते रहते हैं कि उसकी तुलनामें सब लोग उसे परमेश्वरके समान ही लगते हैं और ऐसा लगना ही सच्चा परमार्थ है।

भगवान्के नाममें वासनाका क्षय निहित है

हम सब जीव वासनामें उलझे हुए हैं; क्योंकि हमारा जन्म ही वासनासे हुआ है। वासनाका मतलब है, 'जो है, वह तो रहे और अधिकाधिक मिलता रहे।' हम अभी ऐसी स्थितिमें हैं। लेकिन प्रारम्भ करना है, इसलिये हम ऐसा कहें कि, 'जो है वह तो रहे और जो अधिक माँगना है, वह परमेश्वरसे माँगे।' इसका परिणाम यह होगा कि जो मिला है, वह परमेश्वरने दिया है और अगर नहीं मिला तो ईश्वरकी इच्छा नहीं है, ऐसी समझ बढ़ती रहेगी, और दाता परमात्मा है यह भावना भी वृद्धिगत होगी। जो है वह भी उसकी इच्छाका फल है, ऐसी समझदारी बढ़कर आसक्ति और बेचैनी कम होगी। और जब आसक्ति कम होने लगेगी, तब 'मुझे यह चाहिये, यह नहीं चाहिये' के भाव घटते रहेंगे, वासनाओंका क्षय होता रहेगा। केवल अपने पुरुषार्थसे वासनाओंके परे जाना असम्भव है। इसके लिये परमात्माके प्रति शरण जानेके अलावा कोई उपाय नहीं। योग्य

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

संगतिका भी इसके लिये उपयोग हो सकता है। यदि किसी बैरागीकी संगतिमें आयेंगे तो कपड़ोंका प्रेम, कपड़े पहननेका शौक कम होगा। किंतु किसी सेठजीकी संगतिमें आयेंगे तो बनाव-सिंगारकी प्रवृत्ति होगी। अतः हमें ऐसी संगतिमें रहना चाहिये, जिससे शरणागत होनेकी भावना बढ़नेमें सहायता होगी।

ईश्वरकी शरण जानेका या शरणागत होनेका मतलब है, उसे सर्वस्व समर्पित करके जीवन-यापन करना। इसका अर्थ है कि हम उपाधिरहित बनें। इसका तात्पर्य यह है कि हमें ऐसे ही साधनोंको जुटाना चाहिये या ऐसे ही साधनोंके साथ रहना चाहिये, जो उपाधिरहित हों। ऐसा साधन है भगवान्‌का नामस्मरण करना। काल, वेला, परिस्थिति, ऊँच-नीच भाव, स्त्री-पुरुष, विद्वत्ता-अनाड़ीपन, अमीरी-गरीबी, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य आदि कोई बात नामस्मरणमें बाधा निर्माण नहीं कर सकती। नामस्मरणके लिये कोई साधन या उपकरण भी अनिवार्य नहीं होता। वह तो हम अपने हृदयमें निरन्तर रख सकते हैं। नामस्मरणमें बैरागीको कष्ट नहीं है, वह तो हम

कहीं भी, कभी भी साथमें ले जा सकते हैं। इसके लिये हमें विषयकी आसक्ति, विषयके साथ होनेवाली एकरूपता छोड़नी चाहिये। ‘भगवान् मेरे साथ हैं’ ऐसी श्रद्धा रखनेपर वृत्ति विषयके साथ एकात्म नहीं हो पाती। हनुमान्जीने सीताजीको मुद्रिका दी, उसे देखनेपर सीताजीको श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका स्मरण हुआ। इसी प्रकार हमें भी नामस्मरण करते समय ईश्वरका ही निरन्तर स्मरण होना चाहिये।

भगवान्‌के अनुसन्धानमें जो बँधा हुआ रहता है, मानो उसने कालको पराजित कर दिया है। ऐसे लोगोंके मनमें मृत्युका डर क्यों होगा? भगवान्‌को सर्वस्व समर्पित करनेके कारण उसके मनमें वासना क्यों बची रहेगी? और जहाँ वासना बची नहीं है, वहाँ मृत्युका प्रवेश नहीं हो पाता। वासना नष्ट होनेका मतलब है देहबुद्धि नष्ट होना। वासनाओंके क्षयमें अहंकी मृत्यु है और अहंकी मृत्यु देखनेके लिये हमें भगवान्‌का नामस्मरण निरन्तर करना चाहिये।

[संग्राहक—श्री गो० सी० गोखले]

महर्षि रमणकी मूक पशु-पक्षियोंके प्रति करुणा-भावना

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

महान् आध्यात्मिक विभूति महर्षि रमण जहाँ कुष्ठियों एवं बीमारोंकी अपने हाथोंसे सेवा किया करते थे, वहीं वे गायों, बन्दरों, मोरों, कबूतरों, तोतों आदि पशु-पक्षियोंको चारा, फल एवं दाना खिलाकर बहुत प्रसन्नताकी अनुभूति करते थे।

एक बार आश्रमके एक कर्मचारीने आश्रममें एक बच्चेको घुड़की दिखानेके कारण एक बन्दरपर डण्डेसे प्रहार कर दिया। बन्दरकी टाँगमें चोट आयी। महर्षिने उसे घायल देखा तो दुःखित हो उठे। उन्होंने कर्मचारीको बुलाकर कहा—‘मूक पशु-पक्षी प्रकृतिकी अनूठी देन हैं। इनमें भी वही आत्मा है, जो हम सबमें है। इनके साथ क्रूरताका व्यवहार करना अधर्म एवं अन्याय है।’

कर्मचारीने कहा—‘बन्दर बच्चोंको घुड़की दे रहा था। इसलिये मैंने क्रोधमें आकर डण्डा मार दिया।’
महर्षिने कहा—‘भले आदमी! तुम भी बन्दरको घुड़क देते तो वह भाग जाता। उसे क्रूरतासे डण्डा मारना तो ठीक नहीं था।’

यह सुनते ही कर्मचारीने क्षमा माँगी तथा बोला—‘मैं इस गलतीके लिये आज उपवास करूँगा।’
महर्षि मुसकराकर बोले—‘उपवासकी कोई आवश्यकता नहीं है। भविष्यमें किसी मूक प्राणीके साथ ऐसा व्यवहार न करनेका संकल्प ही पर्याप्त है।’

साधकोंके प्रति—

शरीर नहीं, परमात्मा अपने हैं

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रायः साधकोंकी यह धारणा रहती है कि करनेसे ही सब कुछ होता है, इसलिये शुभ कर्म करने चाहिये। यह धारणा बड़ी अच्छी है, पर कर्म कर्ताके अधीन होते हैं। अतः कर्ता जैसा होता है, उसके द्वारा कर्म भी वैसे ही होते हैं। कर्मयोग भी निष्काम कर्मसे नहीं होता, अपितु निष्काम कर्तासे होता है; अतः स्मरण, कीर्तन, जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि करना बहुत उत्तम है, इन्हें अवश्य करना चाहिये। इनमें जप, ध्यानादि कर्म एक तो स्वतः होते हैं और एक करने पड़ते हैं। जबतक कर्तामें भाव नहीं है, तबतक उसे जप-ध्यानादि करने पड़ते हैं, पर भाव होनेसे उसके द्वारा स्वतः स्वाभाविक ही जप, ध्यानादि होते हैं और तेजीसे होते हैं। अब कर्तामें भाव कैसे आये ? इसपर विचार करना है।

जहाँ हम अपने-आपको ‘मैं हूँ’ इस प्रकार मानते हैं, वहीं यह मान लें कि ‘मैं भगवान्का हूँ’। इस प्रकार जब ‘मैं’-पनमें अटल भाव हो जायगा, तब निरन्तर स्वतः भगवान्का भजन होगा। अभी तो घर (संसार)-का काम स्वतः होता है और रात-दिन निरन्तर होता है। जैसे नौकरी करते हैं तो समयपर जाते हैं और समयपर आते हैं, वैसे ही जप-ध्यानादि भी समयपर करते हैं। तात्पर्य यह है कि जप-ध्यानादि कर्म समयकी सीमामें बँधे रहते हैं। यदि हमारा भाव हो जाय कि ‘मैं भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं’, तो घरके कामकी तरह रात-दिन सतत भगवान्का भजन होगा। भजनके बिना हम रह नहीं सकेंगे और घर (संसार)-का काम नौकरीकी तरह होगा। अतः कर्ताके भावोंमें परिवर्तन होनेसे कर्मोंमें स्वतः स्वाभाविक और शीघ्रतासे परिवर्तन हो जाता है।

साधकसे भूल यह होती है कि वह 'मैं हूँ' के स्थानपर अपने नाम, वर्ण, आश्रम, जाति, सम्प्रदाय आदिको बैठा देता है, जैसे मैं अमुक नामवाला हूँ, मैं अमुक वर्णवाला हूँ, मैं साधु हूँ, मैं गृहस्थ हूँ आदि अनेक मान्यताएँ कर लेता है। ऐसी मान्यताओंके कारण

साधनकी सिद्धिमें विलम्ब होता है। कारण कि ये मान्यताएँ ‘मैं’ में रहती हैं और भगवान्‌का भजन (उपासना) ‘कर्म’ में रहता है। साधकको चाहिये कि वह ‘मैं भगवान्‌का हूँ’—इस प्रकार ‘मैं’ में भगवान्‌को रखे और वर्णाश्रम आदिको ‘कर्म’ में रखे। तात्पर्य यह है कि भीतरसे ‘मैं तो भगवान्‌का हूँ’ ऐसा मानते हुए बाहरसे नाटकमें स्वाँगकी तरह अपने वर्णाश्रम आदिके कर्तव्यका पालन करता रहे।

जहाँ साधक 'मैं हूँ' मानता है, वहाँ भगवान् उससे भी अधिक सूक्ष्मरूपसे विराजमान हैं। 'मैं हूँ' क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्र (शरीर)-को जाननेवाला (गीता १३।१), और भगवान् कहते हैं कि सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ— 'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत' (गीता १३।२)। तात्पर्य यह कि क्षेत्रज्ञ तो केवल एक शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाला है, पर क्षेत्रज्ञमें जो परमात्मा हैं, उनका किसी शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं है और सबमें परिपूर्ण होनेके कारण उनका सबसे सम्बन्ध है! वे ही वास्तवमें अपने हैं। हम जिस शरीरको अपना मानते हैं, वह कभी अपना था नहीं, है नहीं और रहेगा नहीं। पर परमात्मा अपने थे, अपने हैं और अपने रहेंगे। वे अपनेसे कभी विमुख नहीं हुए। हमीं उनसे विमुख हुए हैं। वे परमात्मा बड़े मधुर हैं, बड़े प्रिय हैं और अपनेमें हैं— ऐसा माननेपर वे स्मरण किये बिना ही याद रहेंगे, भजन किये बिना ही उनका भजन होगा, चिन्तन किये बिना ही उनका चिन्तन होगा। उनमें स्वतः ऐसी प्रियता होगी, जैसी अपने शरीरमें और अपने जीते रहनेमें भी नहीं है।

‘मैं हूँ’ में जो ‘हूँ’ है, वह शरीरको लेकर है। उस ‘हूँ’ में ‘है’ रूपसे परमात्मा ही है। तू है, यह है, वह है—सब जगह परमात्मा ही ‘है’—रूपसे विद्यमान हैं। जड़ और चेतनमें, स्थावर और जंगममें, उत्पत्ति, स्थिति और विनाशमें, भाव और अभावमें—सब जगह वे परमात्मा ज्यों-के-त्यों हैं। साधक यदि ‘हूँ’ का त्याग कर दे अर्थात् ‘मैं’ (अहंता)-को मिटाकर सामान्य

‘मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण असुन्दर हों या सुन्दर-शिरोमणि हों, गुणहीन हों या गुणियोंमें श्रेष्ठ हों, मेरे प्रति द्वेष रखते हों या करुणासिन्धु-रूपसे कृपा करते हों, वे चाहे जैसे हों, मेरी तो वे ही एकमात्र गति हैं।’

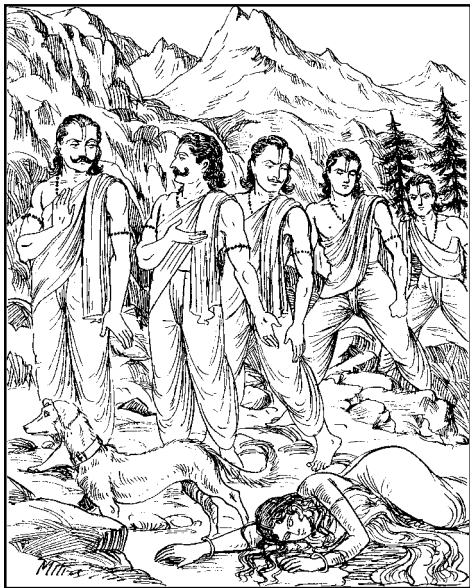
आजके भाई कभी-कभी थोड़ी-सी सम्पत्तिके लालचमें एक-दूसरेके प्राणतक ले लेते हैं। उनके लिये राम तथा भरतका भ्रातृ-प्रेम आदर्श है, जो अयोध्याके सम्पन्न राज्यको भी एक-दूसरेकी हित-कामनासे ठकरा

तुलसीने शबरी, केवट आदिके माध्यमसे सांकेतिक रूपमें अहम् भावका भी खण्डन किया है। राम शबरीके

‘सखे! यह क्या बात है? तुम तो वज्रधारी हो। तुम्हारे योग्य यह कार्य नहीं है।’ इन्द्रने हँसकर मयको हृदयसे लगाया और कहा—‘विद्वान् पुरुष किसी भी उपायसे अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धि करते हैं।’ तबसे मयके साथ इन्द्रकी गहरी मैत्री हो गयी। मय सदाके लिये इन्द्रका हितैषी हो गया। [ब्रह्मपुराण]

पतनके कारण

महाप्रस्थान करते समय पाण्डवोंने पश्चिमसे उत्तर दिशामें आकर महागिरि हिमालयका दर्शन किया। उसको लाँघकर जब वे आगे बढ़े तो उन्हें बालूका समुद्र दिखायी पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ महागिरि सुमेरुका दर्शन किया। समस्त पाण्डव एकाग्रचित्त होकर बड़ी तेजीके साथ चल रहे थे। उनके पीछे आती हुई द्रौपदी लड़खड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसे नीचे पड़ी देख महाबली भीमसेनने धर्मराजसे पूछा—‘भैया! राजकुमारी द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया था; फिर बताइये, क्या कारण है कि वह नीचे गिर गयी?’



युधिष्ठिरने कहा—नरश्रेष्ठ! इसके मनमें अर्जुनके प्रति विशेष पक्षपात था, आज यह उसीका फल भोग रही है।

यह कहकर धर्मात्मा युधिष्ठिर द्रौपदीकी ओर देखे बिना ही अपने चित्तको एकाग्र करके आगे बढ़ गये। थोड़ी देर बाद सहदेव भी गिरे। उन्हें गिरते देख भीमसेनने युधिष्ठिरसे पूछा—‘भैया! यह माद्रीनन्दन सहदेव, जो सदा हमलोगोंकी सेवामें संलग्न रहता और अहंकारको कभी अपने पास फटकने नहीं देता था, आज क्यों धराशायी हुआ है?’

युधिष्ठिरने कहा—राजकुमार सहदेव किसीको अपने-जैसा विद्वान् नहीं समझता था, इसी दोषके कारण इसे आज गिरना पड़ा है।

द्रौपदी और सहदेवको गिरे देख बन्धुप्रेमी शूरवीर नकुल शोकसे व्याकुल होकर गिर पड़े। यह देख भीमसेनने पुनः उनसे प्रश्न किया—‘भैया! संसारमें जिसके रूपकी समानता करनेवाला कोई नहीं था, जिसने कभी अपने धर्ममें त्रुटि नहीं होने दी तथा जो सदा हमलोगोंकी आज्ञाका पालन करता था, वह हमारा प्रिय बन्धु नकुल क्यों गिर पड़ा?’ भीमसेनके इस प्रकार पूछनेपर युधिष्ठिरने नकुलके सम्बन्धमें यों उत्तर दिया—‘भीमसेन! नकुल हमेशा यही समझता था कि रूपमें मेरे समान दूसरा कोई नहीं है। इसके मनमें यही बात बैठी रहती थी कि मैं ही सबसे बढ़कर रूपवान् हूँ। इसीलिये इसको गिरना पड़ा है।’ उन तीनोंको गिरे देख अर्जुनको बड़ा शोक हुआ और वे भी अनुतापके मारे गिर पड़े। दुर्धर्ष वीर अर्जुनको गिरे और मरणासन्न हुए देख भीमने पुनः प्रश्न किया—‘भैया! महात्मा अर्जुन कभी परिहासमें भी झूठ बोले हों, ऐसा मुझे याद नहीं आता; फिर यह किस कर्मका फल है, जिससे उन्हें भी पृथ्वीपर गिरना पड़ा।’

युधिष्ठिर बोले—अर्जुनको अपनी शूरताका अभिमान था। इन्होंने कहा था कि ‘मैं एक ही दिनमें शत्रुओंको भस्म कर डालूँगा’ किंतु ऐसा किया नहीं। इसीसे आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है। इतना ही नहीं, इन्होंने सम्पूर्ण धनुर्धरोंका अपमान भी किया था, जिसका फल इन्हें भोगना पड़ रहा है; अतः अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसा नहीं करना चाहिये।

यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतनेमें ही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरनेके साथ ही उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको पुकारकर कहा—‘राजन्! जरा मेरी ओर तो देखिये। मैं आपका प्रिय भीमसेन हूँ और यहाँ गिरा हुआ हूँ; यदि जानते हों तो बताइये, मेरे गिरनेका क्या कारण है?’

युधिष्ठिरने कहा—‘भीम! तुम बहुत खाते थे और दूसरोंको कुछ भी न समझकर अपने बलकी डींग हाँका करते थे; इसीसे तुम्हें भूमिपर गिरना पड़ा है।’

यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे बिना ही आगे चल दिये।

जीव-शिक्षा-सिद्धान्त

[स्वामी श्रीहरिदासजीकृत अष्टादश पद]

[श्रीराधामाधव-युगलोपासनाके परमाचार्य रसिक भक्तशिरोमणि स्वामी श्रीहरिदासजी (वि० सं० १५३७-१६३२)-ने कुंजबिहारी दिव्य युगलके लीलाचिन्तनमें निमग्न रहकर अनेक सुन्दर एवं गूढ़ पदोंकी रचना की, जो भक्तिपथके रसिक साधकोंके लिये अमूल्य सम्पत्ति-सदृश हैं। स्वामीजी श्रीश्यामा-श्यामके युगलस्वरूपको लाड़-लड़ाते हुए यद्यपि सदैव छकेसे रहते थे, परंतु रसोन्मत्त रहते हुए भी अपने परदुःखकातर एवं मृदुल स्वभावके कारण उन्होंने मायासे बंधे भावुक भक्तोंके कल्याणहेतु 'जीव-शिक्षा-सिद्धान्तके अष्टादश पद' को प्रकट किया। इन पदोंमें मानो वेद-पुराणादि समस्त शास्त्रोंमें प्रतिपादित कर्म-ज्ञान-भक्ति और रसिकताका सार समाहित है। ज्ञान-वैराग्य-भक्ति तथा प्रेमसे युक्त इन पदोंकी टटिया स्थानके बाबा श्रीअलबेलीशरणजीने एक विस्तृत व्याख्या की थी। श्रीराधामाधवके प्रेमी भक्तों और साधकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी जानकर जीव-शिक्षा-सिद्धान्तके अष्टादश पदों और उनके मूल भावार्थको उसी पुस्तकसे संक्षिप्तकर 'कल्याण' के पाठकोंके हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है—सम्पादक]

प्रथम पद

ज्योंही ज्योंही तुम राखत हो त्योंही त्योंही रहियत है हो हरि।
और तौ अचरचे पाँड़ धरौं सो तौ कहौ कौन के पैंड भरि॥
जद्यपि कियौ चाहौं अपनौ मन भायौ
सो तौ कैसे^१ करि सकौं जो तुम राखौ पकरि।

कहिं श्रीहरिदास पिंजरा के जनावर लौं
तरफराइ^२ रह्यौ उड़िवै कौं कितौक करि॥ १॥
भावार्थ—हे हरि! आप जैसे-जैसे रखते हो, वैसे-वैसे ही रहा जाता है, अर्थात् मैं उसी-उसी प्रकारसे रहता हूँ; क्योंकि मेरे स्वरूपकी स्थिति और प्रवृत्ति आपके ही अधीन है, और तो अचरचे—आपके विचार अर्थात् आपकी इच्छा बिना पाँय धरौं, माने चलना चाहूँ या कुछ भी करना चाहूँ, तौ कौनके सामर्थ्य—बलपर पैंड भरि सकौं? अर्थात् आपकी इच्छाके बिना एक पाँव, एक डग भी नहीं धर सकता हूँ, फिर विशेष कर्तव्यकी तो बात ही कहाँ है?

यद्यपि आपकी रुचिके बिना कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं है, फिर भी संकल्प—विकल्पात्मक मन होनेसे वह नये-नये संकल्प—मनोरथ करता रहता है और जैसे-जैसे संकल्प होता है, वैसे ही सुखकी इच्छा होती है और प्रयत्न भी करता है, यह मनका स्वाभाविक धर्म है। यद्यपि अपने मनकी रुचिके अनुसार करना चाहनेपर भी किसी भाँति मन-भाया कर नहीं सकता हूँ; क्योंकि आपने गुण-स्वभावरूपी रज्जुसे बाँध रखा है, पकड़ रखा है, तो इधर-उधर कैसे भटक सकता हूँ?

रसिक-अनन्य-नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं—'पिंजरेमें बन्द पक्षीकी भाँति जीव सर्वथा परतन्त्र है, श्रीहरिके अधीन है। यह शरीररूपी पिंजरेमें बँधा हुआ उससे निकलने—छूटनेके लिये, सुख-प्राप्तिके लिये तड़फ रहा है; किंतु जैसे पिंजरेमें बन्द पक्षी पंख फड़फड़ाकर रह जाता है, उड़ नहीं सकता, ऐसे ही इस जीवकी दशा है। यह सर्वथा श्रीहरिके वशमें है।

अथवा श्रीस्वामीजी महाराज गूढ़ रहस्यका संकेत कर रहे हैं—शरणागतजन-उपासकजन तन-मन-वचनसे विश्वास-भावसहित भक्ति-साधन करनेपर भी अपने बलसे न विकारोंको दूर कर पाता है और न भाव-प्रेम ही जाग्रत् कर पाता है, इससे उसके मन-प्राण तड़फते हैं, व्याकुल होते हैं, फिर भी वह निराश-निश्चिन्त होकर बैठता नहीं है। वह धैर्य-उत्साहसहित कृपासिन्धु-स्नेहवारिधि अपने प्राणाराध्य इष्ट-आचार्यके कृपा-स्नेहमय स्वभावको स्मरणकर उन्हींकी कृपा, सेवा, प्रेमकी प्राप्तिके लिये सदा तड़फता रहता है, सदा तत्पर, तल्लीन रहता है।

द्वितीय पद

काहू कौ बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें सब होइ बिहारी बिहारनि।
और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाखिये सो तौ है हारनि॥
जाहि तुमसौं हित तासौं तुम हित करौ सब सुख कारनि।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्राननि के आधारनि॥ २॥
भावार्थ—हे श्रीबिहारी-बिहारिणि! सुर-मुनि-

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मोहिनी आपकी दुर्जय मायाकी प्रबलताके अधीन होनेसे किसीका बल नहीं है, जो साधन-प्रयत्न करके मायासे पार हो जाय; क्योंकि सभी आपकी मायामें भटक रहे हैं। जो कुछ भी होता है, वह सब आपकी कृपासे ही होता है। जीवको आत्मस्वरूपका ज्ञान और आत्म-समर्पणादि भक्तिके अंग-साधन—इन सबका कारण आपकी कृपा ही है।

और कृपाके आश्रयके बिना शरीरमें आत्मबुद्धि, अहंबुद्धि, ममबुद्धि करना यह मिथ्या—असत् ज्ञान है। प्रपंच, नाम-बहिर्मुखताको उत्पन्न करनेवाला मायाजाल—संसार तथा भगवत्प्राप्तिके विरोधी जो भी वस्तु—साधन हैं, इनको कहना, इनका वर्णन करना, यही महान् अनर्थकर दोष है, यही महान् अज्ञान है, इसको न करना चाहिये। मिथ्या प्रपंचको कहना, यह कैसा है, हरणशील है, माने आत्मस्वरूपको, भगवद्दासत्वको भुलानेवाला और शरीरमें अहं-मम उत्पन्न करनेवाला है, अर्थात् भक्तिस्वरूपसे गिरानेवाला है।

हित शब्द—प्रीतिसामान्यका वाचक है। जो जीव जिस भावसे आपसे प्रीति करता है, आप भी उसी भावसे प्रेम करते हो। जो आपसे प्रीति—प्रेम करता है, उससे आप भी प्रीति—प्रेम करते हैं। अथवा आपकी कृपाके बिना जीव कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। जिसका आपके प्रति प्रेम है, जो आपसे प्रेम करता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि उससे आप प्रेम करते हैं। उसे आप चाहते हैं, उससे आप मिलनेको व्याकुल हैं; क्योंकि आप सब सुखोंके कारणस्वरूप हैं, सर्व सुखोंके दाता हैं। जो जिस भावसे आपसे हित करता है, उसी भावके अनुसार आप सुख देनेवाले हैं; क्योंकि आप सुख-विशिष्ट हो और अपने भक्तोंको लोकोत्तर परमाद्भुत शङ्खसत्त्वमय सुखके दाता हो।

इस प्रकार पाँचों रसोंके स्वरूपका संकेत करके अब नित्य निकुंज-विहार रसको पृथक् रूपसे दिखाते हैं।

रसिक-अनन्य-नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज

कहते हैं कि हमारे प्राणोंके आधार सर्वस्व महामधुर
नित्य निकुंजरसविलासी श्रीश्यामा-श्याम-कुंजविहारिणी-
कुंजविहारी हैं ।

तृतीय पद

कबहुँ कबहुँ मन इत उत जात यातेंब कौन अधिक सुख ।
बहुत भाँतिन घत आनि राख्यौ नाहिं तौ पावतौ दुख ॥

कोटि काम लावण्य बिहारी ताके

मुँहाचुहीं सब सुख लियें रहत रुख।

श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजबिहारी

कौ दिन देखत रहौं विचित्र मुख ॥ ३ ॥

भावार्थ—अनादि अविद्याजन्य कर्मात्मक मायाके वशमें अधिक कालसे विषय-वासनामें फँसा हुआ जो मन है, वह जीवका भक्तिमें प्रवेश होनेसे कभी-कभी भगवद्भावनासे हटकर विषयोंकी ओर चला जाता है, तो भी कहते हैं—‘इससे अधिक सुख कौन-सा है? मृगतृष्णावत् संसारके सुखोंमें मुग्ध हुआ मन भटक रहा है, उसे बहुत प्रकारके घत—दाँव-उपायोंसे अनेक युक्ति—साधनोंसे विषयोंसे हटाकर श्रीविहारीजीके श्रीचरणोंमें लगाया। यदि आपके श्रीचरणोंमें नहीं लगाता, तो बहुत दुःख पाता।

अरे मन! तू सुखके लिये भटक रहा है। सुखके मूल-आधार, सुखके स्वरूप, सुखके सिन्धु तो श्रीविहारीजी हैं। वे करोड़ों कामदेवोंके लावण्य-सौन्दर्यसे भी अत्यधिक सुन्दर हैं। सब सुख उनके श्रीचरणोंके आश्रित हैं, उनकी उपासना करते हैं। उनके सन्मुख दृष्टि-सों-दृष्टि जोड़े हुए, उनकी रुचिके अनुसार सेवा करनेमें ही सब सुख है। आपकी रुख—माने रुचिके अनुसार सखीजन सेवन करनेमें ही अपनेको कृतार्थ मानती हैं, सब सुखोंको प्राप्त करती हैं। श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि इसीलिये मेरे स्वामी श्यामा-कुंजविहारिणि-कुंजविहारीका दिन माने नित्य-प्रतिदिन विचित्र मुख देखता रहता हूँ, इसीमें परम सुख, परम लाभ है। [क्रमशः]

संत-स्मरण

(परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)

❁ कराचीमें दवे परिवार था। बड़े पुत्र वासुदेव और छोटे कन्हैया। वासुदेव बचपनसे ही भजनमें लगे रहे, विवाहका प्रसंग आया तो कहा कि शरीर तो भजनके लिये मिला है। भोजनके लिये बुलाया जाय तो डकार लेने लगे कि पेट भरा है, भोजनका ग्रास मुखकी जगह कानमें ले जायँ। भजन करनेको श्मशानमें चले जायँ, कहें कि मृत्युके निकट भजन अच्छा बनता है। घरमें सबको भव-रोग लगा है, वहाँ हमें भी लग जायगा।

दवेजीके छोटे पुत्र कन्हैया कराचीके घरसे ही चल पड़े कि गृहस्थीका प्रपंच न लगे। कहा, तीर्थ-यात्रापर जायँगे। चलते हुए अक्षय तृतीयाके दिन श्रीवृन्दावन पहुँचे। वहाँ दर्शनादि करके सोंरेंजी धाममें गये। भजन किया और बोले कि हम इस शरीरसे परिवारमें किसीकी सेवा नहीं कर सके। अब हमारा समय पूरा हो गया। श्रीठाकुरजी विमानपर बैठे हैं और हमें बुला रहे हैं। ऐसा कहकर शरीर छोड़ दिया।

❁ वृन्दावनके सन्त पहाड़ीबाबाजी महाराजको धुन आयी कि भगवान्का दर्शन करना है, सो चल पड़े उज्जैनकी ओर भगवान् महाकालके दर्शन करने, बिना बताये अकेले। देवासके पास जंगलमें थके-हारे एक शिवालयमें लेट गये। उन्हें लगा जैसे कोई उनकी जटा पकड़कर खींच रहा है। उठकर बैठ गये तो अत्यन्त तीव्र प्रकाशमें शिवजीकी झलक आयी, जैसे डमरू हाथमें लिये कह रहे हैं—जा, उत्तर दिशामें जा, महात्मा मिलेंगे, तेरा काम बन जायगा। चूँकि शिवलिंगकी जलहरी उत्तर दिशाकी ओर होती है, उसीको पकड़कर चल दिये। कुछ दूर आगे बढ़नेपर एक बालक दीखा। जाड़ेके दिन थे, फिर भी वह बिलकुल नंग-धड़ंग। उसीसे पूछा, इधर कोई महात्मा रहते हैं क्या ? उसने कहा—

आगे चले जाओ, ऐसे महात्मा हैं, जो मिट्टीको छू दें तो मिसरी हो जाय। आगे बढ़े तो चमेलीकी झाड़ीतले एक जटाधारी महात्मा बैठे दीखे। पासमें धूना जल रहा था। बैठने लगे तो उन्होंने कहा—पहले स्नान करके आओ। पासमें जलस्रोत था, वहाँ स्नान किया और आकर बैठे तो महात्माजीने आद्योपान्त अबतककी सारी घटना सुना दी और कहा कि वह बालक और कोई नहीं, साक्षात् सनत्कुमार थे। तुम्हारा काम वहीं हो जाता। कोई बात नहीं। पूज्य बाबाजी कहते थे कि उस समय मनमें आया कि ये महात्मा किसी तन्त्रविद्यासे मिट्टीको मिसरी बनाते हैं क्या ! किंतु अब इन्हीं नेत्रोंसे ठाकुरजीके दर्शन होते रहते हैं। समझ आ गयी कि यह देह ही मिट्टी है। इस देहमें रहते हुए ब्रह्मानन्दका अनुभव होता रहे तो यह मिट्टी मिसरी बन जाती है।

❁ विदिशामें एक महात्मा रामचरितमानसका सत्संग कराते थे। केवल मानसकी चौपाई और अर्थ पढ़कर सुनानेको कहते थे और कोई बात नहीं। किसी सत्संगीके साथ उसका छोटा पुत्र एक दिन सत्संगमें आ पहुँचा। उसकी चंचलतासे सबका ध्यानभंग होता देखकर महात्माजीने पूछा—किसका बच्चा है ? उसके पिताने सहज भावसे कह दिया—आपका ही है। महात्माजीने बच्चेसे कहा ठीकसे बैठ और सत्संग करने लगे। समाप्तिपर जब उस बच्चेका पिता उसे लेकर जाने लगा, तब महात्माजीने बच्चेका हाथ पकड़ लिया और बोले—यह नहीं जायगा। तुमने कहा यह हमारा है तो यही रहेगा। पिता बोला—यह तो कहनेकी बात थी, कोई सचमुच आपका बच्चा थोड़ी हो गया। महात्मा बोले—बस, यही फर्क है। भीतरसे सारे सम्बन्धोंको नकली समझो और असलीका अभिनय करते रहो तो बेड़ा पार है।—‘प्रेम’

माँ विन्ध्यवासिनीकी स्तुति

(डॉ० महेशजी पाण्डेय 'बजरंग')

वासुदेव घरे जनमीं प्रकटीं, उनकौ हम शीश झुकावत हैं। उर में जिनके ममता बहती, हिय में उनहीको बिठावत हैं ॥
मनमें अनुहार बसी जिनकी, उनकौ हम ध्यान लगावत हैं। मैया महिषासुरमर्दिनी की, छिन-छिन जयकार मनावत हैं ॥

तथैव कर्मभाग्याभ्यां नरस्य चोन्नतिर्भवेत् ॥

अब दो बात उनसे भी कर लें जो पुरुषार्थको महत्त्व नहीं देते, केवल भाग्य-भाग्य चिल्लाते रहते हैं, तथा अपने पक्षमें सैकड़ों सच्ची-झूठी दलील देते हैं। कहेंगे

किसी सेठके यहाँ एक सज्जन व्यक्ति नौकरी करता था, बिना अवकाश लिये। ईमानदारीसे अपने मालिकके हितमें प्रसन्नतासे लगा रहता। बहुत वर्ष उपरान्त सहसा वह व्यक्ति बिना बताये कामपर नहीं आया। सेठने सोचा कि शायद उसका वेतन कम था तथा वह संकोचवश बोला नहीं, अतः कहीं दूसरी जगह अधिक वेतनपर चला गया। तीन दिन बाद जब सेवक आया तो सेठने पूरा वेतन देकर ५०० रुपये बढ़ा दिये। सेवक कुछ न बोला, काम चलता रहा। कुछ दिन बाद पुनः अचानक वह सेवक बिना बताये कामपर न आ सका। जब १२ दिन बाद वह आया, तब सेठने मनमें सोचा कि इसको लोभ आ गया है, यह अपना वेतन बढ़ानेके चक्करमें हमको नखरे दिखाता है। अतः अबकी बार वेतन तो दिया, परंतु ५०० रुपये कम कर दिये। सेवकने चुपचाप रखे और कामपर जाने लगा। न खुशी न गम, न शर्त न शिकायत! सेठ चकित था, उसने पूछा भाई! तुम बाबा हो क्या? ५०० रुपये बढ़ाये तो खुशी नहीं, ५०० रुपये घटाये तो दुःख नहीं। क्या मामला

विश्वासघातका दण्ड

रीछके ऐसा कहनेपर सिंह चुप हो गया। तत्पश्चात् धर्मगुप्त जागे और रीछ वृक्षपर सो गया। तब सिंहने राजासे कहा—‘इस रीछको नीचे छोड़ दो।’ तब राजाने अपने अंकमें सिर रखकर सोये हुए रीछको पृथ्वीपर ढकेल दिया। राजाके गिरानेपर रीछ वृक्षकी डाली पकड़ता लटक गया। वह पुण्यवश वृक्षसे नीचे नहीं गिरा। अब वह राजाके पास आकर क्रोधपूर्वक बोला—‘राजन्! मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला ध्यानकाष्ठ नामक मुनि हूँ। मेरा जन्म भृगुवंशमें हुआ है। मैंने स्वेच्छासे रीछका रूप धारण किया है। मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया था। फिर सोते समय तुमने मुझे क्यों ढकेला? जाओ, मेरे शापसे बहुत शीघ्र पागल होकर पृथ्वीपर विचरो।’ इस प्रकार राजाको विश्वासघातका दण्ड मिला। [स्कन्दपुराण]

भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

धर्मध्वज और कुशध्वज—इन दोनों नरेशोंने कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी उपासना करके अपने प्रत्येक अभीष्ट मनोरथको प्राप्त कर लिया। महालक्ष्मीके वर-प्रसादसे उन्हें पुनः पृथ्वीपति होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे दोनों धनवान् और पुत्रवान् हो गये। कुशध्वजकी भार्याका नाम मालावती था। समयानुसार उनके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लक्ष्मीका अंश थी। वह भूमिपर पैर रखते ही ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी। उस कन्याने जन्म लेते ही सूतिकागृहमें स्पष्ट स्वरसे वेदके मन्त्रोंका उच्चारण किया और उठकर खड़ी हो गयी। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे ‘वेदवती’ कहने लगे। उत्पन्न होते ही उस कन्याने स्नान किया और तपस्या करनेके विचारसे वह वनकी ओर चल दी। भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस देवीको प्रायः सभीने रोका, परंतु उसने किसीकी भी न सुनी। वह तपस्विनी कन्या एक मन्वन्तरतक पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करती रही। उसका तप अत्यन्त कठिन था, तो भी लीलापूर्वक चलता रहा। अत्यन्त तपोनिष्ठ रहनेपर भी उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उसमें दुर्बलता नहीं आ सकी। वह नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही। एक दिन सहसा उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी पड़ी—‘सुन्दरि! अगले जन्ममें भगवान् श्रीहरि ही तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा प्रभृति देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन्हीं परम प्रभुको स्वामी बनानेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा।’

यह आकाशवाणी सुननेके पश्चात् वह कन्या रुष्ट होकर गन्धमादनपर्वतपर चली गयी और वहाँ पहलेसे भी अधिक कठोर तप करने लगी। वहाँ चिरकालतक तप करके विश्वस्त हो वहीं रहने लगी। एक दिन वहाँ उसे अपने सामने दुर्निवार रावण दिखायी पड़ा। वेदवतीने अतिथि-धर्मके अनुसार पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जल देकर उसका सत्कार किया। रावण बड़ा पापिष्ठ था। वह वेदवतीके समीप जा बैठा और पूछने लगा—‘कल्याणि! तुम कौन हो और क्यों यहाँ ठहरी हुई हो?’ वह देवी परम सुन्दरी थी। उस साध्वी कन्याके मुखपर मन्द मुसकानकी छटा छायी रहती थी। उसे देखकर दुराचारी रावणका हृदय विकारसे संतप्त हो गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर उसका शृंगार

करनेको उद्यत हुआ। रावणकी इस कुचेष्टाको देखकर उस साध्वीका मन क्रोधसे भर गया। उसने रावणको अपने तपोबलसे इस प्रकार स्तम्भित कर दिया कि वह जड़वत् होकर हाथों एवं पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया। कुछ भी कहने-करनेकी उसमें क्षमता नहीं रह गयी। ऐसी स्थितिमें उसने मन-ही-मन उस कमललोचना देवीका मानस स्तवन किया। देवी वेदवती रावणपर सन्तुष्ट हो गयी और परलोकमें उसकी स्तुतिका फल देना स्वीकार कर लिया। साथ ही उसे यह शाप दे दिया—‘दुरात्मन्! तू मेरे लिये ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कालका ग्रास बनेगा; क्योंकि तूने कामभावसे मुझे स्पर्श कर लिया है, अतः अब मैं इस शरीरको त्याग देती हूँ।’

देवी वेदवतीने इस प्रकार कहकर वहीं योगद्वारा अपने शरीरका त्याग कर दिया। तब रावणने उसका मृत शरीर गंगामें डाल दिया और मनमें इस प्रकार चिन्ता करते हुए घरकी ओर प्रयाण किया—‘अहो! मैंने यह कैसी अद्भुत घटना देखी। यह मैंने क्या कर डाला?’—इस प्रकार विचार करके अपने कुकृत्य और उस देवीके देहत्यागको स्मरण करके रावण बहुत विषाद करने लगा। वही देवी साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी कन्या हुई और उसका नाम सीता पड़ा, जिसके कारण रावणको मृत्युका मुख देखना पड़ा था। वेदवती बड़ी तपस्विनी थी। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे स्वयं भगवान् श्रीराम उसके पति हुए। ये श्रीराम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं। देवी वेदवतीने घोर तपस्याके द्वारा आराधना करके इन जगदीश्वरको पतिरूपमें प्राप्त किया था। वह साक्षात् रमा थी। श्रीराम परम गुणी, समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न, शान्त-स्वभाव, अत्यन्त कमनीय एवं श्रेष्ठतम देवता थे। वेदवतीने ऐसे मनोऽभिलषित स्वामीको प्राप्त किया। कुछ कालके पश्चात् रघुकुलभूषण, सत्यसंध भगवान् श्रीराम पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनमें पधारे। वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप ठहरे थे। वहाँ ब्राह्मणरूपधारी अग्निसे उनकी भेंट हुई। भगवान् श्रीरामको देखकर विप्ररूपधारी अग्निका मन संतप्त हो उठा। तब सर्वथा सत्यवादी उन अग्निदेवने सत्यप्रेमी भगवान् श्रीरामसे ये सत्यमय वचन कहे—‘भगवन्! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। श्रीराम! यह

जब लंका में वास्तविक सीता भगवान् श्रीरामके पास विराजमान हो गयीं, तब रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली छायासीताकी चिन्ताका पार न रहा। वह भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके आज्ञानुसार भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। पति प्राप्त करनेके लिये व्यग्र होकर वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही थी—‘भगवान् त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये।’ यही शब्द उसके मुखसे पाँच बार निकले। भगवान् शंकर छायासीताकी यह प्रार्थना सुनकर बोले—‘तुम्हें पाँच पति मिलेंगे।’ इस प्रकार त्रेताकी जो छायासीता थी, वही द्वापरमें द्रौपदी बनी और पाँचों पाण्डव उसके पति हुए। [ब्रह्मवैवर्त०, प्रकृतिखण्ड अ० १४]

संत-वचनामृत

(वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)

❖ जीवन्मुक्त तथा भक्तजनोंको भी गोपीभाव अलभ्य है। इसे प्राप्त करनेमें जाति, आचार, ज्ञान कारण नहीं है। यह तो भगवत्कृपा, भक्तकृपाके अधीन है। कहाँ वे वनवासिनी, आचार-विचार, ज्ञान, उत्तम जातिसे रहित गँवार गोपियाँ और कहाँ श्रीकृष्णके प्रति इनका अनन्य प्रेम। अहो! ये धन्य हैं, धन्य हैं। इससे यही सिद्ध हुआ कि भगवान्‌के स्वरूपको न जानकर भी जो उनसे प्रेम करे, उन्हें सर्वस्व अर्पण कर दे तो अपनी कृपासे प्रभु उसका कल्याण कर देते हैं, जैसे कोई अनजाने अमृत पी ले तो वह भी अमर हो जायगा।

❀ भगवद्भक्ति क्लेशोंका नाश करती है। अविद्या मायाके प्रभावसे काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर होते हैं, इनके कारण जीव तामस अन्धकारमें क्लेश पाता है। भक्ति शुभ कल्याणदात्री है, सभी प्रकारके लौकिक पारलौकिक मंगल कल्याण भक्तको प्राप्त होते हैं। भक्त संसारी आदमीकी तरह खाता-पीता और व्यवहार करता है, पर उसके मनकी स्थिति भिन्न होती है, अतः संसारीकी और भक्तकी मानसिक स्थिति भिन्न रहती है। शान्ति निरन्तर भक्तके हृदयमें रहती है। विमख अशान्त रहता है।

❖ प्रभुकी कृपा ही कुशल है, शरीरसे अधिक दुःखदायक मनके रोग होते हैं। उनसे बचानेवाली भगवद्भक्ति है, वह सत्संगसे प्राप्त होती है। सन्त-भगवन्तसे कृपा करनेकी अभिलाषा करनी चाहिये।

❖ बहुत-सी सम्पत्ति पाकर कृष्णविमुख अभक्त शान्तिको प्राप्त नहीं कर पाता है। भगवद्भक्त प्रभुकृपासे प्राप्त धनमें सन्तुष्ट रहता है और शान्तिका अनुभव करता है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्यका लेशमात्र इस लोकमें सुख देता है। अतः सत्संग-स्वाध्यायद्वारा उसीको प्राप्त करनेकी इच्छा करनी चाहिये।

❖ मानव शरीरसे ही भक्ति प्राप्त होती है। पशुको विवेक नहीं है, वह विवश होकर श्रम करता है। पुण्योंसे प्राप्त देवशरीरसे भी भक्ति नहीं बनती है। स्वर्ग केवल भोगभूमि है। पृथ्वीपर किये गये पुण्योंका भोग स्वर्गमें, पापोंका भोग नरकमें होता है, अतः यह मानव शरीर ही

धन्य है, इसीसे सत्संग आदि नये पुण्य करके मनुष्य आवागमनसे छुटकारा पाता है। भगवद्धामको पाता है। मानव शरीरसे भक्ति ही कर्तव्य है।

❀ आलवन्दारके एक श्लोकका भाव यह है कि मेरा जो कुछ है, मैं जो कुछ हूँ, वह सब आपकी ही सम्पत्ति है। मेरी बुद्धिने यह निश्चय कर लिया है फिर अब मेरे पास है ही क्या, जो आपको समर्पित करूँ। शुद्धा शरणागति यही है। मनमें आश्रय अपने इष्ट देवताका ही रखना चाहिये, अन्य कोई मेरे कार्यको सिद्ध कर दे, मेरा कल्याण कर दे—ऐसी आशा नहीं करनी है। अपना भला भक्त-भगवान्से ही है, इसमें सन्देह नहीं है।

❖ सन्त-समाजमें, सत्संगमें, रामकी भक्ति ही गंगाकी धारा है। ब्रह्मविचार अन्तःसलिला सरस्वती हैं। विधि-निषेध, कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय ही यमुनाजी हैं। कृष्ण ही ब्रह्म हैं, उनके सम्बन्धमें उनके स्वरूपकी चर्चा सरस्वती हैं। इस त्रिवेणीमें स्नान ही प्रयाग-कुम्भ स्नानका फल देगा। अक्षयवट विश्वास है; अपने इष्टमें, अपने धर्ममें अटल विश्वास प्रभुकृपासे बना रहे तो समझो कि अक्षयवटकी छायामें हैं। अक्षयवटके पत्रपर बालमुकुन्द कृष्ण दर्शन देते हैं अर्थात् विश्वासमें श्रीकृष्णका दर्शन होता है।

❁ श्रीभरत-भाईके स्मरणसे श्रीराम प्रसन्न होते हैं। विश्वके भरण-पोषण करनेवालेका नाम भरत है। सभी लोग श्रीरामजीका स्मरण करते हैं। श्रीरामजी भरतलालका स्मरण करते हैं। भरतजीका स्मरण करनेसे श्रीरामजीकी भक्ति प्राप्त होती है।

❀ राधा सर्वेश्वरी ब्रजकी आराध्या हैं। उनमें सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य आदि दिव्य गुणोंका निवास है। 'राधा' शब्दके उच्चारणसे श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। राधाके पादारविन्दोंकी आराधनासे श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति होती है। युगल-स्वरूप एक ही है। कृष्णके नामरूपमें राधा और राधाके नामरूपमें श्रीकृष्ण व्याप्त रहते हैं। केवल लीला-रसवर्धनके लिये युगल दिव्य शरीर धारण करते हैं। जय श्रीराधे! ['परमार्थके पत्र-पुष्प'से साभार]

ईश्वराराधना और धार्मिकता क्या है ?

(श्रीगजाननजी पाण्डेय)

प्रार्थना कैसे करें ?

जो यह पढ़े हनुमान चलीसा । होय सिद्धि साखी गौरीसा ॥

अर्थात् प्रतिदिन पूजाके वक्त हम ईश्वरकी आराधना (प्रार्थना)—के रूपमें जो स्तोत्र, श्लोक अथवा चालीसा आदि पढ़ते हैं, उसे सही उच्चारण, शब्दोंके अर्थको समझकर और निहित भावोंको मनमें आत्मसात्कर पढ़ा जाय तो पूजा फलदायी होती है । इसलिये हनुमानचालीसाके उक्त पदमें साधकको उसे पढ़नेकी सलाह दी गयी है । होता यह है कि जब हम किसी पद, दोहा या अन्य धार्मिक साहित्यको पाठद्वारा बार-बार दोहराते हैं तो हमें लगता है कि वह हमें याद हो गया है और अब उसे देखकर पढ़नेकी क्या आवश्यकता है, परंतु संस्कृत या अन्य पद्य-शैलीमें लिखे पदको बोलनेमें हमसे चूक हो सकती है । अतः उसे देखकर पढ़ना ही युक्तिसंगत होगा । इससे हम उन शब्दोंमें निहित भावोंको सरलतासे ग्रहण कर पायेंगे ।

निहितार्थ यह है कि हम जिस समय जो कार्य कर रहे होते हैं, उसे पूरी लगन एवं श्रद्धासे पूर्ण करें तो उसमें निश्चित ही सफलता मिलती है । एकाग्रचित्तसे की गयी आराधनासे सिद्धि प्राप्त होती है ।

काल्डेरानके शब्दोंमें 'कोई भी सत्कार्य व्यर्थ नहीं जाता । यह एक खजानेकी तरह है, जो कर्ताकी आवश्यकताके लिये सुरक्षित रहता है ।'

सिसरोके शब्दोंमें 'बुद्धिमान् विवेकसे, साधारण मनुष्य अनुभवसे, अज्ञानी आवश्यकतासे और पशु स्वभावसे सीखते हैं ।'

दूसरे शब्दोंमें सुनना, देखना और समझना उसीके जीवनको सँवारता है; जो इन तीनोंको अपने जीवनमें ढाल लेता है ।

नाम-स्मरणका प्रभाव—ईश्वरसे प्रीति करनेका सरलतम मार्ग नित्य प्रति उनके नामका जप करना है । इस सन्दर्भमें 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥' इस सोलह अक्षरोंके मन्त्र या 'ॐ नमः शिवाय' अथवा 'श्रीराम जय राम जय जय राम' और जो भी प्रिय हो—उसका

मानसिक अथवा मौखिक रूपमें निरन्तर जप किया जाय ।

निम्नलिखित भजनका भाव यह है कि 'राम' के नामका सहारा लिया जाय—

जै जै राम, जै सिया-राम, दो अक्षर का प्यारा नाम ।

राम नाम के जपने से ही, बन जाते सब बिगड़े काम ॥

क्योंकि कहा गया है कि रामसे बड़ा रामका नाम है । उनके नाममें बड़ी शक्ति है । पत्थरोंपर 'राम' नाम लिखकर समुद्रपर सेतु बाँधा गया था ।

ईश्वर सब जगह हैं और वे प्रेमसे प्रकट होते हैं ।

'हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम ते प्रकट होहिं मैं जाना ॥' अतः नाम-स्मरणको जीवनका अंग बनाया जाय ।

धार्मिकता क्या है ?

इसके बारेमें स्वामी विवेकानन्दने कहा था—

'ईश्वरका मार्ग संसार-पथके विपरीत है । ईश्वर और कुबेरकी सिद्धि बहुत कम लोगोंको होती है । धर्म केवल शुष्क दर्शनमात्र नहीं है । व्यक्तिके पास बहुत-सी पुस्तकें, सिद्धान्त, शब्द या तर्क हो सकते हैं परंतु धर्म नहीं होता; क्योंकि धर्म तब शुरू होता है, जब अन्तरात्माको 'प्रियतम' (प्रभु)—के लिये आवश्यकता, अभाव और व्याकुलताका बोध होने लगता है, उसके पहले कदापि नहीं ।' उनके अनुसार जबतक कोई ऐसा नहीं करता, तबतक मैं उसे धार्मिक नहीं कह सकता ।

मनुके शब्दोंमें 'शरीर जलसे पवित्र होता है, मन सत्यसे, बुद्धि ज्ञानसे और आत्मा धर्मसे पवित्र होती है ।' मनुके उक्त कथनके अनुसार जीवन और राष्ट्र धर्मद्वारा संचालित हो । इस अर्थमें 'धर्म' शब्दका तात्पर्य यह है कि जो समाजको धारण करता है, उसीका नाम धर्म है । 'धारणात् धर्म इत्याहुः' यानी धर्म व्यक्ति और समाजके सम्बन्धोंके निर्वाहका सूत्र देता है । गोस्वामीजीने सुख और धर्मके सम्बन्धकी ओर संकेत किया है, पर उन्होंने धर्मका एक दूसरा फल भी बताया है—धर्मसे वैराग्य, वैराग्यसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष । अर्थात् व्यक्तिके जीवनका महत्तर लक्ष्य ईश्वरसे एकाकारता और पूर्णताको प्राप्त करना है ।

(श्रीबलविन्दरजी 'बालम')

दर्शनको सारी रात नींद नहीं आयी। वह चारपाईपर पड़ा जागता रहा और सोचता रहा कि क्या मैं भी पिताकी तरह सारी उम्र लोगोंकी मजदूरी करता रहूँगा ? मेरी माँ सारी उम्र लोगोंके बर्तन साफ करती रहेगी ? लोगोंकी अच्छी-बुरी बातें सुनती रहेगी ? बड़ी मुश्किलसे घरका रोटी-टूक चलता है। मैं मजदूरी नहीं करूँगा। वे कौनसे लड़के हैं, जो इंजीनियरिंगमें अच्छी रैंक लाते हैं ? वे भी तो मेरे ही दिमाग-जैसे हैं। क्या उनके दिमाग किसी अलग किस्मके होते हैं ? मैं क्यों अच्छी रैंक नहीं ले सका ? मुझमें क्या कमी है ? वह सारी रात यह सोचता रहा। उसकी नींद-जैसे पंख लगाकर उड़ गयी

परंतु दर्शनने मिन्नतके साथ हाथ जोड़ते हुए फिर कहा, 'चाचा, भगवान्‌की कसम एक बार केवल पाँच

लेने आये हैं, क्या करके आया है बाहर?’

दर्शन उठकर बाहर गया तो वे लोग अन्दर आ चुके थे। उन्होंने कहा, 'बेटा, दर्शनकुमार आपका ही नाम है? आप इंजीनियरिंगके टेस्टमें राज्यमें प्रथम स्थानपर रहे हैं। हम आपके बारेमें कुछ लिखने आये हैं, अतः कुछ अपने फोटोग्राफ दो। तुम राज्यभरमें प्रथम स्थानपर आये हो....।'

दर्शनने कहा, 'चाची, मैं आपका यह एहसान सारी उम्र नहीं भूल सकता। पाँच सौ रुपये दे दो, बस।' सरपंचनीने दर्शनको स्नेहदृष्टिसे देखते हुए पाँच सौ रुपये दे दिये।

दर्शन सुनकर स्वयं हैरान था। उसको यकीन नहीं हो रहा था। उसके सारे शरीरमें खुशीकी लहर दौड़ गयी। खुशीमें उसके रोएँ खड़े हो गये। जैसे वह हवामें उड़ रहा हो। उसका पिता जैसे दिनमें तारे देख रहा हो। उसकी माँ और बहनें खुशीमें खामोश हो गयीं। जैसे खुशी अभिव्यक्त करनी मुश्किल

बस फिर क्या था ? दर्शनने इंजीनियरिंगके टेस्टका फार्म भर दिया । कुछ माहके बाद उसका टेस्ट होना था । उसका पिता उसको कोसता रहता, परंतु दर्शनकी माँके कहनेपर वह चुप रहने लगा ।

दर्शनके हृदयकी ज्योति प्रज्वलित हो चुकी थी। उसको सारी-सारी रात नींद न आती। वह सारा-सारा दिन तथा सारी-सारी रात पुस्तकोंमें ही गुम रहता। नींद मानो कोसों दूर हो गयी हो। शायद ही वह रातको घण्टा, आधा घण्टा सोता हो। दिन-रात एक कमरेमें बन्द। उसके मनमें एक संघर्ष, एक शक्तिका संकल्प, सम्पूर्ण कर्ममें बदल चुका था।

हो। ऐसा लगता था जैसे गर्मीकी दोपहरीमें ठण्डी हवाकी खिड़की खुल गयी हो। जो भगवान्से माँगा नहीं, वह भगवान्ने दे दिया, अचानक झोली भर दी भगवान्ने। खुशीमें सारा परिवार समुद्रमें आजाद तैरती मछलियोंकी भाँति नजर आ रहा था। सारे गाँवमें किसी दिव्य सुरभिका मंजर छा गया। दर्शनकी प्राप्तिकी सुरभि सारे गाँवमें फैल गयी। कण-कण सुगन्धित कर गयी। जब सरपंच तथा सरपंचनीको पता चला तो सरपंचने दर्शनके घरके सामने आते ही ऊँची आवाजमें कहा, 'ओऐ मुण्डेयो (अरे लड़को)! ढोल लायो ओऐ।' ढोलके स्वर आसमानको छूने लगे। भंगड़ेपर भंगड़ा। सरपंच, सरपंचनी, पंच क्या! सारा गाँव नाच उठा। सारे गाँवमें लड्डू बाँटे जा रहे थे।

आखिर टेस्ट (परीक्षा)–का दिन आ गया। उसका टेस्ट अच्छा हो गया था। वह अपने पिताके साथ मजदूरी करने जाने लगा यह सोचकर कि अगर रैंक अच्छी न आयी तो सरपंचके पाँच सौ रुपये कहाँसे दूँगा।

कुछ सप्ताहके बाद एक सफेद रंगकी कार दोपहरके समय दर्शनके घरके आगे रुकी। दर्शन तथा उसके पिता गाँवमें मजदूरी करके घर रोटी खानेके लिये आये थे। दरवाजेके खटखटानेकी आवाज सुनकर दर्शनके पिता बाहर आये। कारवालोंने कहा, ‘दर्शनकुमार यहाँ रहते हैं?’ उसके पिताने कहा, ‘हाँ जी साब, यहाँ ही रहता है।’ इतना कहकर वह अन्दर भागा-भागा आया और दर्शनसे कहने लगा, ‘अरे, क्या कारनामा करके आया है तू, बड़े-बड़े लोग बड़ी-सी गाड़ीमें तुझे

सबसे पहले दर्शनने सरपंचनीके पाँव छुए। उसने दर्शनको आशीर्वाद दिया, सरपंचने कसकर उसे छातीसे लगा लिया और कहा, ‘दर्शन! गाँवका नाम रोशन कर दिया तूने पुत्र, जीता रह। सारे राज्यमें, देशमें नाम कर दिया है तूने।’ दर्शनके हृदयकी लौने संघर्ष, शक्ति तथा विद्यासे तपस्याको सार्थक रूप दे दिया था, जिसकी रोशनीसे क्षेत्र जगमगाता रहेगा।

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

अनुभव—आपके जीवनका यह अनुभव है कि अनुकूलताको बनाना, बनाये रखना और बढ़ाना एवं प्रतिकूलताको टालना तथा रोकना आपके वशकी बात नहीं है। यदि यह आपके वशकी बात होती तो आप अपने जीवनमें सदैव अनुकूलताको बनाये रखते और प्रतिकूलताको आने ही नहीं देते। आप केवल यह प्रयास कर सकते हैं कि आपके जीवनमें अनुकूलता बनी रहे और प्रतिकूलता नहीं आये।

कैसे आती है—कर्म-सिद्धान्तके अनुसार अनुकूलता शुभ कर्मों और प्रतिकूलता अशुभ कर्मोंका फल है। लेकिन मार्मिक बात यह है कि इन दोनोंको भगवान् भेजते हैं।

क्यों भेजते हैं— भगवान् आपको अपना महान् प्रेमी भक्त बनाना चाहते हैं। केवल इसीलिये वे इनको भेजते हैं। भगवान् मानवहृदयका प्रेम चाहते हैं, वे प्रेमके भूखे हैं, इसी बातको भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने निम्नलिखित पदके द्वारा बताया है—

कहाँ तुच्छ सब, कहाँ महत् तुम, पर यह कैसा अनुपम भाव ।
बने प्रेमके भूखे, सबसे प्रेम चाहते, करते चाव ॥
धन देते, यश देते, देते ज्ञान-शक्ति-बल, देते मान ।
किसी तरह सब तुम्हें प्रेम दें, इसीलिये सब करते दान ॥
लेते छीन सभी कुछ, देते घृणा-विपत्ति, अयश-अपमान ।
करते निष्ठुर चोट, चाहते, तुम्हें प्रेम सब दें, भगवान् ॥
सभी ईश्वरोंके ईश्वर तुम बने विलक्षण भिक्षु महान् ।
उच्च नीच सबसे ही तुम नित प्रेम चाहते प्रेम-निधान ॥
अनुपम, अतुल, अनोखी कैसी अजब तुम्हारी है यह चाह ।
रस समृद्ध, रसके प्यासे बन, रस लेते मनभर उत्साह ॥

(पद-रत्नाकर ६९)

इसका भाव इस प्रकार है—

हे भगवान्! कहाँ तो तुच्छ प्राणी और कहाँ आप महान्से भी महान् प्रभु! फिर भी आप प्रेमके भूखे बनकर सभीसे प्रेम चाहते हैं। आप मानवको धन, यश, ज्ञान, शक्ति, बल और सम्मान केवल इसलिये देते हैं, कि

किसी भी तरहसे इनके द्वारा वह आपको प्रेम दे। यदि मानव इनके द्वारा आपको प्रेम नहीं देता, स्वयं ही सुख भोगने लगता है तो आप इन सबको इससे वापस छीन लेते हैं और उसको घृणा, विपत्ति, अपयश, अपमान देते हैं, इतना ही नहीं, एक निर्दयी व्यक्तिकी तरह उसपर निष्ठुर चोटें मारते हैं। ऐसा करनेके पीछे भी आपकी यही भावना रहती है कि वह आपको प्रेम दे। आप सभी ईश्वरोंके ईश्वर हो, फिर भी आप एक विलक्षण भिखारी बन गये और उच्च-नीच सभी व्यक्तियोंसे प्रेम चाहते हैं। यह आपकी कैसी अनुपम इच्छा है कि प्रेयरसके समुद्र होते हुए भी आप प्रेयरसके प्यासे बनकर अत्यन्त उत्साहके साथ प्रेयरसका पान करते हैं।

क्या करें—जब भगवान् अनुकूलता और प्रतिकूलता भेजें तो आप भगवान्‌को प्रेम देकर उनके प्रेमी भक्त बन जायँ। प्रेमी भक्त बननेके लिये इस बातको भलीभाँति समझ लें—

दो जगह—भगवान् कहाँ हैं; इसका उत्तर है; या तो मन्दिरमें या मन्दिरके बाहर। आप अपने घरमें, मन्दिरमें बैठकर ही भगवान्की पूजा, आरती करते हैं, वहीं भोग लगाते हैं। मन्दिरमें भगवान् हैं, चाहे वह मन्दिर आपके घरमें हो या घरके बाहर। मन्दिरके बाहर भी भगवान् हैं, उन भगवान्का नाम है—आपके पति, पत्नी, संतान, सभी परिवारजन, रिश्तेदार, मित्र, सभी मनुष्य, सभी प्राणी, सम्पूर्ण संसार। लेकिन इन सबका वह रूप नहीं है, जो मन्दिरवाले भगवान्का है। यदि आप इनमें वही रूप देखना चाहते हैं तो इनको प्रेम दीजिये। प्रेमसे वे आपके सामने उसी रूपमें प्रकट हो जायँगे। श्रीरामचरितमानस (१।१८४।५) —में आया है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना । प्रेम तेन प्रगट होहिं मैं जाना ॥

अर्थात् मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे केवल प्रकट हो जाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (७। १९)-में आया है—
 'वासुदेवः सर्वमिति' अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही हैं।

अनुकूलतामें प्रेम देना—इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(१) दो रूप—अनुकूलताके दो रूप हैं । पहला है—अनुकूल परिस्थिति, जैसे—स्वस्थ शरीर, पर्याप्त आय, सुख-सुविधाएँ, सेवाभावी परिवारजन, मान-सम्मान आदि । दूसरा रूप है—परिवारजनों, मित्रों, रिश्तेदारों, सहयोगियों आदिका अच्छा व्यवहार, सबके द्वारा सेवा आदि ।

(२) मन्दिरमें विराजमान भगवान्—अनुकूलतामें भगवान्को प्रेम मिलता है आपके मनकी भावनाओंसे। मनमें यह भावना रखें, ऐसा सोचें—हे भगवान्! यह अनुकूलता मेरी मेहनत, गुणों, शुभ कर्मोंसे नहीं आयी है, इसको आपने भेजा है। मैं इसके द्वारा आपके उन रूपोंको प्रेम दूँगा, जो मन्दिरके बाहर हैं, जैसे—शरीर, परिवारजन, रिश्तेदार, मित्र, समाज, संसार। मैं अपने सुखके लिये इसका उपयोग नहीं करूँगा। ऐसा नहीं सोचें कि इस अनुकूलताके द्वारा अब मैं विभिन्न प्रकारके सांसारिक सुखोंका भरपूर उपभोग करूँगा। ऐसा सोचने और करनेसे तो आप सुखोंमें फँस जायँगे।

(३) मन्दिरके बाहरवाले भगवान्—आपका शरीर, परिवारजन, सम्बन्धी, मित्र, निकट रहनेवाले सभी मनुष्य, प्राणी आदि मन्दिरके बाहरवाले भगवान् हैं। शरीरको भगवान्का रूप मानकर इसकी सेवा करें, परिवारजनों, मित्रों आदिको भगवान्का रूप मानकर सुख, सुविधा, सम्मान, प्रसन्नता दें। सबको यथाशक्ति सुख दें। यही भगवान्को प्रेम देना है, यदि वह अनुकूलता किसी परिवारजन अथवा अन्य व्यक्तिके माध्यमसे आयी है तो उसको भगवान्का स्वरूप मानकर उससे कई गुना अधिक अनुकूलता देनेकी भावना रखें और यथाशक्ति दें।

(४) दुःख नहीं दें—शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदिके द्वारा भगवान्‌के किसी भी रूपको कभी भी दुःख नहीं दें, उसका अपमान नहीं करें। किसीको मन-ही-मन बुरा समझना, उसका बुरा सोचना, उससे नाराज रहना, ईर्ष्या करना, बदला लेनेकी भावना रखना आदि उसको मनसे

दुःख देना है। किसीके दोष देखकर क्रोध करना आँखोंसे दुःख देना है। निन्दा सुनना कानोंसे दुःख देना, निन्दा करना, असत्य और कटु बोलना, ताना मारना आदि वाणीसे दुःख देना है। अवज्ञा, अवहेलना, अनादर करना आदि व्यवहारसे दुःख देना है। दुःख देनेवालेको कई गुना ज्यादा दुःख मिलेगा, यह प्राकृतिक विधान है। उसको भी दुःख नहीं देना, जो आपको दुःख देता है, जिसमें अनेक बुराइयाँ हैं। ये दोनों करुणाके पात्र हैं, क्रोधके नहीं। दुःख देनेवाले और दोषीको बड़ा भारी नुकसान होता है। अज्ञानतावश वह अपना ही नुकसान करता है। आप करुण हृदयसे उसके दोषको मिटाने और उसके हितके लिये उसको दण्ड दे सकते हैं। ऐसा करना तो उसकी सेवा है।

प्रतिकूलतामें प्रेम देना—इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

(१) दो रूप—प्रतिकूलताके दो रूप हैं—
पहला—प्रतिकूल परिस्थिति, जैसे—शरीरमें असाध्य रोग
पैदा हो जाना, व्यापारमें घाटा लग जाना, दुर्घटना हो
जाना, मृत्यु हो जाना आदि। दूसरा—प्रतिकूल व्यवहार,
जैसे—परिवारजनोंके द्वारा अपमान, आलोचना, निन्दा,
तिरस्कार, लड़ाई-झगडा या नुकसान किया जाना।

(२) दो तरहसे—आपके जीवनमें दो तरहसे प्रतिकूलता आयेगी। पहली, अपने आप और दूसरी, किसीके माध्यमसे। आप पूरी सावधानीसे सड़कपर चल रहें हैं, फिर भी ठोकर लग गयी, आप गिर गये, चोट लग गयी। आपको पता ही नहीं चला कि मुझे चोट किसने लगायी। आप चल रहे हैं, किसीने जानबूझकर आपको धक्का दे दिया, गिर गये, चोट लग गयी। यहाँ धक्का देनेवाला आपको दीख गया। आप सोचेंगे, इसने मुझे चोट लगायी है।

(३) मन्दिरमें विराजमान भगवान्—जब अपने-आप प्रतिकूलता आये तो आप मनमें यह भाव रखें या सोचें कि इसको मेरे प्रभुने भेजा है और मुझे महान् प्रेमी भक्त बनानेके लिये भेजा है। ऐसा सोचकर खूब प्रसन्न रहें, आनन्दित रहें। इस भावनासे भगवान्को अपार प्रेम

प्रेरणा-पथ—

दोष भूलका परिणाम है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जबतक आप यह न स्वीकार कर लें कि व्यर्थ चिन्तन भूलजनित है, सार्थक चिन्तन दैवी देन है, तबतक आप उसे नहीं मिटा सकते। आप कहेंगे कि सार्थक चिन्तनको हम अपना पुरुषार्थ क्यों न मान लें ? भैया मेरे, सार्थक चिन्तनको यदि तुम अपना पुरुषार्थ मानोगे, तो अभिमानमें डूब जाओगे। आपको शायद मालूम हो कि यह साधारण बात नहीं है। प्रह्लाद—जैसे परम और प्रभु—विश्वासी भक्तका चरित्र देख लीजिये। प्रह्लाद साधारण नहीं, जिन्होंने एक घटनाके आधारपर मान लिया कि प्रभु रक्षक हैं, और उसमें इतनी गहरी दृढ़ता कर ली कि भय—जैसी चीज उनके जीवनमें रही ही नहीं। उन्होंने पुरुषार्थपूर्वक यह मान लिया कि मैं तो अचाह हो गया, मुझे तो कुछ चाहिये नहीं। परंतु देखिये, जो हम सबका अपना है, वह कितना महान् है। देखिये, ईश्वरवादका अर्थ यह नहीं है कि यदि आप ईश्वरको मानें, तब तो ईश्वर है, यदि न मानें तो नहीं है। ईश्वरवादका यह अर्थ आप कभी न समझें और न कहें कि जो ईश्वरको नहीं मानते, उनके लिये ईश्वर नहीं है। और जो कहें कि हम मानते हैं, वह उनकी बपौती है। यह बिलकुल झूठी बात है। ईश्वर तो कहते ही उसको हैं कि जिनका होना आपके मानने या न माननेपर निर्भर नहीं। अरे, वह भी ईश्वर है, जो आपके न माननेपर न रहे, और जो तुम्हारे माननेपर रहे ? इसका मतलब तो हुआ कि तुम्हीं ईश्वर हो गये। अगर तुम्हारे माननेसे कुछ होता है और न माननेसे कुछ नहीं रहता, तो तुम ईश्वर हुए कि ईश्वरकी सत्ता सिद्ध हुई ? ईश्वरवादका असली अर्थ है कि वह उसका भी उतना ही है, जो उसे मानता है और जो उसे नहीं मानता, उसका भी वह उतना ही है। जो बलपूर्वक शासन करे, उसे ईश्वर नहीं कहते। ईश्वर बलपूर्वक शासन नहीं करता किसीपर। अब मैं आपसे पूछता हूँ—‘अगर ईश्वर बलपूर्वक शासन करने लगे, तो जब झूठ बोलना चाहो, तब वह बोलनेकी शक्ति छीन ले, तो तुम क्या कर लोगे?’ बहुतसे लोग कहते हैं कि भगवान्

परीक्षा लेता है। क्या भगवान् बे-समझ है, जो परीक्षा लेता है? भगवान् क्या सर्वत्र नहीं है? भगवान् क्या सर्वका ज्ञाता नहीं है? अरे! उसके तो सिखानेके अनोखे-अनोखे ढंग हैं, बाबू। वह परीक्षा-अरीक्षा कुछ नहीं लेता। परीक्षा लेनेकी उसे जरूरत ही क्या है। वह क्या अल्पज्ञ है, जो परीक्षा लेगा? और जो अल्पज्ञ है, वह भगवान् हो सकता है क्या?’

तो महाराज ! प्रह्लादजीको ऐसा ही मालूम हुआ कि मैंने प्रभुमें विश्वास किया है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, मैं निष्काम हूँ, मैं निर्वैर हूँ, मैं द्वेष-रहित हूँ। समस्त गुणोंका आभास श्रीप्रह्लादजीको अपनेमें हुआ। कथा सुनी होगी आपने। चाहे उसे आप काल्पनिक मानें, चाहे इसे इतिहास मानें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। बातको समझनेके लिये निवेदन कर रहा हूँ। तो इन गुणोंका आभास जब श्रीप्रह्लादजीको हो गया, और फिर आगे देखिये; प्रत्यक्षरूपसे उसे जलानेके लिये किसको बिठाया था ? होलीको। किसको ? होलीको। और वे किसके पुत्र जल गये थे ? गुरु-पुत्र जल गये। और प्रह्लादने कहा था कि अगर मेरे हृदयमें द्वेष न हो, तो गुरु-पुत्र जीवित हो जायँ। यानी प्रत्यक्षरूपसे उन्हें द्वेष-रहित होनेका भास होता है। भगवान्ने पूछा—‘भैया ! कुछ चाहते हो ? बोले, ‘नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये।’ बिगड़ गये। बोले, मैं कोई बनिया हूँ ? फिर भी प्रभु कहते हैं—देखिये, प्रभुकी कृपालुता कितनी अधिक है। मैं तो कभी-कभी सोचकर हैरान हो जाता हूँ कि यह मानव उन्हें न जाने इतना प्यारा क्यों लगता है। वे फिर भी कहते हैं—‘नहीं, भैया प्रह्लाद ! तुम माँगो। तुम माँग लो।’ प्रह्लादजीने कहा—तो अच्छा, मैं यह चाहता हूँ कि मैं कुछ न चाहूँ। आगे अब आप देखिये। मैं यह चाहता हूँ कि मैं कुछ न चाहूँ। प्रभुने कह दिया ‘एवमस्तु’। अब देखिये, गुण उसीकी देन है। जिन्हें वह ऐसे निराले ढंगसे देता है कि लेनेवालेको मालूम ही नहीं होता कि मैंने लिया। उसकी देन है। अब प्रह्लादजीको चेत आया और चेत आनेपर—देखिये, चेतकी पहचान

भगवान् संकोचमें डूब गये। 'महाराज ! यह तो बताओ कि आपने मेरे बापको मारा कि उसके अभिमानको ?' प्रभुका कैसा अनुपम उदार स्वभाव है कि तुरंत ही अपनेको अपराधी मान लिया, अपने अभिमानी भक्तके सामने। भैया ! मैंने मारा तो तेरे बापको ही है। मैं आपसे पूछता हूँ—'ममता रहते हुए कोई निष्काम रह सकता है क्या ? नहीं रह सकता। इसलिये मेरे भाई, जितना भी दिव्य जीवन है, सब अनन्तकी देन है, जितना भी दोष है, सब अपनी भूलका परिणाम है। इसी तथ्यके आधारपर दोष मिट सकते हैं।'।

उन्होंने शाप देते हुए कहा—‘वासव! शक्र! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नीके साथ दुराचारपूर्ण व्यवहार किया है; इसलिये तुम युद्धमें जाकर शत्रुके हाथमें पड़ जाओगे। वासव! उस शापके ही कारण तुम शत्रुकी कैदमें पड़े हो, दूसरे किसी कारणसे नहीं। [वाल्मीकीय रामायण]

गोमाताद्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ

[गोमाता स्वरूपतः पशुयोनिमें होते हुए भी दिव्य प्राणी हैं। स्वभावसे अत्यन्त सरल होते हुए भी अपने पालनेवालोंके प्रति अपराध करनेवालोंके प्रति वे अत्यन्त उग्ररूप धारण कर लेती हैं। जिस परिवारमें वे पाली जाती हैं, उस परिवारके सदस्योंकी अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक सेवा और रक्षा करती हैं। यहाँ उनके द्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं—सम्पादक]

(१)

गायने तालाबमें डूबनेसे बचाया

घटना पुरानी है, तब मेरी उम्र सात या आठ सालकी रही होगी। उन दिनों मैं अपने गाँवके एक स्कूलमें पढ़ रहा था। मेरे गाँवमें चालीससे पचास गायें थीं। गायें सुबह गाँवसे बाहर चरने चली जाती थीं। शामको चरवाहा गायें वापस चराकर लाता था। शामको गायें गाँवके तालाबमें पानी पीकर अपने-अपने घर वापस आ जाती थीं। गाँवके बाहर बड़ा तालाब था, जिसके दो भाग थे। एक भागका पानी गाँववालोंके पीनेके लिये था और दूसरा नहाने तथा कपड़े धोनेके लिये था।

तालाबके बराबर बीचमें दससे बारह फुटकी सीमेंटकी दीवार थी, जो लोगोंके और जानवरोंके आने-जानेका भी काम देती थी।

एक दिन शामको पाँच बजे स्कूल छूटनेके बाद हम आठ-दस बच्चे गाँवके श्रीराम-मन्दिरके पास खेल रहे थे। उतनेमें गाँवका एक साँड़ मन्दिरके पाससे निकला। आज वह गायोंके साथ न रहकर पहले ही गाँवमें आ गया था। वह रातभर मन्दिरके सामने पड़ा रहता था और सुबह सब गायोंके साथ वह भी गाँवके बाहर मैदानमें शामतक चरने चला जाता था। हम इस शान्त स्वभावके साँड़के साथ खूब खेल करते थे। कोई कान तो कोई पूँछ खींच देता था। लेकिन साँड़ केवल अपनी सींग हिलाकर ही रह जाता था। हम जरा भी इससे डरते नहीं थे।

एक दिनकी बात है। एक बच्चेने शर्त लगायी कि जो इस साँड़के ऊपर बैठकर सवारी करेगा, उसे खजूर

खिलाया जायगा। बचपना तो था ही, मैं बातोंमें आ गया और मैंने अपनी बहादुरी दिखानेके लिये मन्दिरकी दीवारपर चढ़कर उस साँड़के ऊपर सवारी की। कुछ मिनटतक तो साँड़ शान्त खड़ा रहा। लेकिन कुछ शरारती लड़कोंने पीछेसे साँड़के पृष्ठभागमें एक धारदार लकड़ी चुभो दी, जिससे वह उछलकर भाग पड़ा। मैं डरके मारे उसके पीठके ऊँचे डिल्ले (ककुद्)-को पकड़कर चिपक गया। साँड़ चारों पैरोंसे कूदता हुआ श्रीशिवजीके मन्दिरके पाससे जहाँ गाँवकी गायें पानी पी रही थीं, मुझे अपने ऊपर लिये हुए धूल उड़ाता और दौड़ता हुआ आ निकला। चरवाहोंने चिल्लाते हुए मुझे बचानेके लिये एक मोटी लकड़ी लेकर साँड़को रोकना चाहा। लेकिन साँड़ रुका नहीं। उसने सीधा रास्ता बदला और वह तेजीसे दौड़ता हुआ दोनों तालाबके बीचके रास्तेमें भागने लगा। भयके मारे मेरा बुरा हाल था। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया था। मुझे लगा कि अब बचना मुश्किल है। आँखें बन्दकर साँड़के डिल्लेको कसकर पकड़कर मैं चिपका हुआ था। साँड़के साथ मैं भी उछल रहा था। प्रभु-प्रेरणासे मैंने आँखें खोलकर सामने देखा तो मेरे दोनों तरफ तालाबका पानी लहरा रहा था। मैंने आव देखा न ताव और साँड़की पीठ छोड़कर उछलकर तालाबके पानीमें प्राण बचाने कूदा, और छपाकसे गहरे पानीमें आ गिरा। तैरना आता नहीं था, डूबने लगा। एक पलको तो ऐसा लगा कि तालाबके पानीसे तो साँड़की पीठ ही अच्छी थी।

गाँववाले, ग्वाला-चरवाहा और मेरे मित्र लड़के अभी मुझसे काफी दूरीपर थे। मैं थोड़ा पानी पी गया और एक बार पानीके ऊपर आया। फिर डूबा। खूब

सौभाग्यसे हमारी पशुशालाके किंवाड़ खुले हुए थे। पिताजी उसी पशुशालाकी ओर भागे और उसीमें घुस गये। पिताजीका पीछा करते हुए डकैत भी वहीं आ पहुँचे, किंतु जैसे ही डकैतोंको गायोंने देखा, जो संख्यामें तीन थीं और एक ही वंशकी थीं, अपना-अपना बन्धन तुड़ाकर डकैतोंको मारनेके लिये दौड़ीं। डकैत गायोंसे डरकर हमारी पशुशालासे बाहरकी ओर भागे, पिताजीको भाग निकलनेका मौका मिल चुका था। वे बच गये। यदि गायें हमारी पशुशालामें न होतीं तो डकैतोंद्वारा हमारे पिताजीकी क्या दुर्दशा होती, इसकी कल्पना करके हम सब आज भी काँप जाते हैं। गायोंने ही उस दिन पिताजीकी रक्षा की थी और सारे गाँवको लुट जानेसे बचा लिया। इसलिये हमारा प्रत्येक भारतीयसे विनम्र निवेदन है कि वह अपने परिवारमें कम-से-कम एक गाय अवश्य रखे और उसकी माताकी तरह ही देखभाल तथा रक्षा करे। समय आनेपर गाय उसकी सेवासे प्रसन्न होकर उसका लोक-परलोक अवश्य सुधार देगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।—मधुसूदन तिवारी

संत-चरित—

औघड़ बाबा श्रीशंकर स्वामी

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)



लगभग अस्सी वर्षसे ऊपरकी बात है। एक चालीस वर्षसे अधिक अवस्थावाला मस्त फकीर काशीमें आ डटा। वह कहाँ पैदा हुआ था, उसका क्या नाम था ? उसकी जाति क्या थी—आदि बातोंका तो कुछ पता नहीं। इन बातोंसे होता ही क्या है ? संत तो सारे संसारकी सम्पत्ति होते हैं। न तो उनकी कोई जाति होती है और न कोई कुल। हमें इन सब व्यर्थ बातोंमें अपना सर खपानेकी कोई जरूरत नहीं। उससे कोई लाभ भी तो नहीं है। हाँ, इतनी बात निर्विवाद है कि वह एक अत्यन्त ही उच्चकोटिका महात्मा था। वह न तो किसीसे कुछ माँगता ही था, न किसीसे कुछ बातचीत ही करता था। दशाश्वमेधपर एक मकानकी बाहरी पटियापर वह सदा पड़ा रहता था। किसीने कुछ मुँहमें ठूँस दिया तो खा लिया, नहीं तो कुछ परवा नहीं। किसीने कोई कपड़ा बदनपर डाल दिया तो, नहीं तो जाड़ा, गर्मी, बरसात सभी यों ही दिगम्बरावस्थामें बीतती थीं। आटा, दाल, चावल, घी, नमक, मिठाई, साग, बेसन—जो भी कुछ आ गया—हण्डीमें डालकर आगपर चढ़ा दिया गया।

पक गया तब उतारकर खा लिया। मल-मूत्रकी हाजत पड़नेपर सड़कपर खड़े होकर त्याग दिया। इसी प्रकार एक-दो दिन नहीं, लगातार—जबसे वह काशी आया था, तबसे अन्ततक—लोगोंने उसे तपस्या करते देखा।

जिस मकानकी पटियापर आप पड़े रहते थे, वह मकान जब गिरा तो आपकी ओर न गिरकर और तीन तरफसे गिरा। उससे अन्य तमाम लोगोंको तो चोट आयी, पर आपपर एक कंकड़ी भी न गिरी। बरसातके दिनोंमें मूसलाधार वर्षा होती रहती थी, पर आपकी हण्डीके नीचे जलनेवाली आग जलती ही रहा करती थी। आपकी खिचड़ी मैदानमें पकती रहती थी, यह तो तमाम लोगोंकी आँखों देखी बात है। शहरके तथा बाहरके अनेकों बड़े-बड़े व्यक्ति आपकी सेवा करते रहते थे। कहना व्यर्थ है कि आपकी सेवासे अनेकों व्यक्तियोंकी मनोकामनाएँ सफल हुईं।

आप ३० मार्च १९३७ ई० को चार बजकर पैंतालीस मिनटपर अकस्मात् उठकर बैठ गये और उसी समय आपने बैठे-बैठे ही शरीर त्याग दिया। लोग देखते ही रह गये। घण्टी बजते ही खिलाडी पर्देसे हट गया।

आप कितने उच्च कोटिके संत थे—इस बातका पता तो लोगोंको आपके भण्डारेके दिन दिनांक ११ अप्रैल १९३७ को तब चला, जबकि उन्होंने हजारों व्यक्तियोंकी भीड़में तुलसीघाटके परम पूज्य श्रीहरिहरबाबाको बैठे देखा। श्रीहरिहरबाबा एक अत्यन्त ही उच्च कोटिके महात्मा थे। आप गंगाजीमें नौकापर ही सदैव दिगम्बर रहा करते थे, पर उस दिन वे भी नौकासे उतरकर भण्डारेमें आकर सम्मिलित हुए थे। आपने जीवनमें न तो किसीको शिष्य ही बनाया और न किसीको कुछ उपदेश ही दिया। आपके मौन आचरणसे ही हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

साधनोपयोगी पत्र

(१)

अतिप्रश्न

प्रिय महोदय ! सप्रेम हरिस्मरण । आपका कृपापत्र मिला । धन्यवाद । आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है—

(१) भगवान्‌को किसने उत्पन्न किया? यह अतिप्रश्न है। जो प्रश्न उठानेयोग्य न हो, उसे उठाना ‘अतिप्रश्न’ करना है। यह प्रश्नकर्ताके लिये हानिकर होता है। भगवान्‌ अजन्मा, अविनाशी, नित्य एवं सनातन हैं। उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। उनकी कभी किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु सदा मौजूद रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती है! जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहारकार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान रहता है, वही भगवान्‌ है।

(२) सृष्टिरचना भगवान्का एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्षस्पर युग-युगसे जो अनन्त लहरें उठती और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है? इन उत्ताल तरंगोंके उत्थान और लयका क्या उद्देश्य है? कौन कह सकता है? यदि कहीं भगवान्की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते हैं? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दुःख भोगता है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। दुःख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें नहीं। शेष भगवत्कृपा।

(२)

शंका-समाधान

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं—

(१) भक्तराज विभीषण राक्षसकुलमें कैसे हो गये? यह प्रश्न ठीक नहीं है। विभीषण राक्षसकुलमें पहले हुए और भक्तराज पीछे बने। इसके सिवा

राक्षसकुल ऐसा अधम कुल नहीं है, जहाँ भक्तराजका जन्म लेना उचित न माना जाय। अलकापुरीके अधीश्वर उत्तरदिशाके दिक्पाल राजाधिराज कुबेर भी राक्षसकुलके ही रत्न हैं। महर्षि पुलस्त्यके पुत्र महर्षि विश्रवा थे, उनके ही पुत्रोंकी परम्परा राक्षसकुल कहलायी। रावणको— **‘उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।’** कहा गया है। रावणने अपने अन्यायपूर्ण आचरणसे उस कुलकी प्रतिष्ठा घटा दी। अन्यथा वह अत्यन्त श्रेष्ठ कुल है।

(२) हनुमान्जी भगवान् शंकरके अवतार थे; इसका प्रमाण स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजीका वचन है। दोहावलीमें उनके निम्नलिखित दो दोहे हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान ।

रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान ॥

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।

पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान ॥

(दोहा० १४२-१४३)

(३) अष्टावक्रमुनिके पिताका नाम कहोड था। वे महर्षि उद्दालकके शिष्य थे। उद्दालकने उनकी सेवासे प्रसन्न होकर उन्हें शीघ्र ही सब वेदोंका ज्ञान करा दिया और अपनी कन्या सुजाताका ब्याह भी कहोडके साथ कर दिया। सुजाता गर्भवती हुई। वह गर्भ अग्निके समान तेजस्वी था। एक दिन कहोड वेदपाठ कर रहे थे। इतनेमें अपनी माँके गर्भमें स्थित बालकने कहा—‘पिताजी! मन्त्र-पाठ शुद्ध नहीं हो रहा है!’ कहोडको अपमान मालूम हुआ। उन्होंने शाप दे दिया—‘तू अभीसे टेढ़ी बात बोलता है। इसलिये आठ अंगोंसे टेढ़ा ही उत्पन्न होगा।’ इस प्रकार अपने पिताके शापसे ही अष्टावक्र मुनि आठ अंगोंसे टेढ़े हुए थे।

उन दिनों राजा जनकके यहाँ बन्दी नामसे प्रसिद्ध एक विद्वान् ब्राह्मण आये थे। वे शास्त्रार्थ करते थे। उन्होंने राजासे यह शर्त करा ली थी कि 'मैं शास्त्रार्थमें जिसे हरा दूँ, उसे पानीमें डुबो दिया जाय; यही उसकी पराजयका दण्ड है। यदि मैं हार जाऊँ तो मुझे भी वैसा ही दण्ड मिले।' एक दिन सृजाताकी इच्छासे उनके पति

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, शरद-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा रात्रिमें ७। ४४ बजेतक	बुध	कृत्तिका रात्रिमें १०। ५५ बजेतक	१३ नवम्बर	× × × ×
द्वितीया ,, ७। ५३ बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ११। ३५ बजेतक	१४ "	× × × ×
तृतीया ,, ७। ३२ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा ,, ११। ४६ बजेतक	१५ "	भद्रा प्रातः ७। ४३ बजेसे रात्रिमें ७। ३२ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ३१ बजे, मिथुनराशि दिनमें ११। ४१ बजेसे।
चतुर्थी " ६। ४१ बजेतक	शनि	आर्द्रा ,, ११। २९ बजेतक	१६ "	× × × ×
पंचमी सायं ५। २४ बजेतक	रवि	पुनर्वसु ,, १०। ४६ बजेतक	१७ "	कर्कराशि सायं ४। ५७ बजेसे, वृश्चिकका सूर्य दिनमें १२। ३४ बजे, हेमन्तऋतु प्रारम्भ।
षष्ठी दिनमें ३। ४७ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ९। ४४ बजेतक	१८ "	भद्रा दिनमें ३। ४७ बजेसे रात्रिमें २। ४९ बजेतक, मूल रात्रिमें ९। ४४ बजेसे।
सप्तमी " १। ५० बजेतक	मंगल	आश्लेषा ,, ८। २५ बजेतक	१९ "	सिंहराशि रात्रिमें ८। २५ बजेतक।
अष्टमी " ११। ४१ बजेतक	बुध	मघा ,, ६। ५५ बजेतक	२० "	अनुराधाका सूर्य रात्रिमें ६। ३७ बजे, मूल रात्रिमें ६। ५५ बजेतक।
नवमी " ९। २३ बजेतक	गुरु	पू०फा० सायं ५। १६ बजेतक	२१ "	भद्रा रात्रिमें ८। १२ बजेसे, कन्याराशि रात्रिमें १०। ५० बजेसे।
दशमी प्रातः ७। २ बजेतक	शुक्र	उ०फा० दिनमें ३। ३५ बजेतक	२२ "	भद्रा प्रातः ७। २ बजेतक, उत्पन्ना एकादशीव्रत (स्मार्त)।
द्वादशी रात्रिमें २। २४ बजेतक	शनि	हस्त ,, १। ५६ बजेतक	२३ "	तुलाराशि रात्रिमें १। १२ बजेसे, एकादशीव्रत (वैष्णव), सायन धनु-राशिका सूर्य प्रातः ८। २४ बजे।
त्रयोदशी " १२। १८ बजेतक	रवि	चित्रा ,, १२। २६ बजेतक	२४ "	भद्रा रात्रिमें १२। १८ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी " १०। २७ बजेतक	सोम	स्वाती ,, ११। ९ बजेतक	२५ "	भद्रा दिनमें ११। २३ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिमें १०। ३७ बजेसे।
अमावस्या " ८। ५७ बजेतक	मंगल	विशाखा ,, १०। ५ बजेतक	२६ "	भौमवती अमावास्या।

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वदि
प्रतिपदा रात्रिमें ७।५० बजेतक	बुध	अनुराधा दिनमें ९।२८ बजेतक	२७ नवम्बर	मूल दिनमें ९।२८ बजेसे।
द्वितीया ,, ७।९ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ,, ९।११ बजेतक	२८ ,,	धनुराशि दिनमें ९।११ बजेसे।
तृतीया ,, ६।५६ बजेतक	शुक्र	मूल ,, ९।२५ बजेतक	२९ ,,	मूल दिनमें ९।२५ बजेतक।
चतुर्थी ,, ७।१५ बजेतक	शनि	पू० षा० ,, १०।०६ बजेतक	३० ,,	भद्रा प्रातः ७।६ बजेसे रात्रिमें ७।१५ बजेतक, मकरराशि सायं ४।२४ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।
पंचमी ,, ८।७ बजेतक	रवि	उ० षा० ,, ११।१९ बजेतक	१ दिसम्बर	श्रीराम-विवाह।
षष्ठी ,, ९।२६ बजेतक	सोम	श्रवण ,, १२।५९ बजेतक	२ ,,	कुम्भराशि रात्रिमें २।२ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें २।२ बजे।
सप्तमी ,, ११।९ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ३।५ बजेतक	३ ,,	भद्रा रात्रिमें ११।९ बजेसे, ज्येष्ठाका सूर्य दिनमें १०।४७ बजे।
अष्टमी ,, १।९ बजेतक	बुध	शतभिषा सायं ५।२८ बजेतक	४ ,,	भद्रा दिनमें १२।९ बजेतक।
नवमी ,, ३।२० बजेतक	गुरु	पू० भा० रात्रिमें ८।५ बजेतक	५ ,,	मीनराशि दिनमें १।२६ बजेसे।
दशमी रात्रिशेष ५।२८ बजेतक	शुक्र	उ० भा० ,, १०।४० बजेतक	६ ,,	मूल रात्रिमें १०।४० बजेसे।
एकादशी अहोरात्र	शनि	रेवती ,, १।६ बजेतक	७ ,,	भद्रा रात्रिमें ६।२६ बजेसे, मेषराशि रात्रिमें १।६ बजेसे, पंचक समाप्त रात्रिमें १।६ बजे।
एकादशी प्रातः ७।२३ बजेतक	रवि	अश्विनी ,, ३।१८ बजेतक	८ ,,	मूल रात्रिमें ३।१८ बजेतक, भद्रा प्रातः ७।२३ बजेतक, मोक्षदा एकादशीव्रत (सबका), श्रीगीता-जयन्ती।
द्वादशी दिनमें ९।१३ बजेतक	सोम	भरणी ,, १।१ बजेतक	९ ,,	सोमप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी ,, १०।९ बजेतक	मंगल	कृत्तिका रात्रिशेष ६।१९ बजेतक	१० ,,	वृषराशि दिनमें ११।२० बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०।५० बजेतक	बुध	रोहिणी अहोरात्र	११ ,,	भद्रा दिनमें १०।५० बजेसे रात्रिमें १०।५४ बजेतक, व्रत-पूर्णिमा।
पूर्णिमा ,, १०।५८ बजेतक	गुरु	रोहिणी प्रातः ७।६ बजेतक	१२ ,,	मिथुनराशि रात्रिमें ७।१४ बजेसे, पूर्णिमा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १०।३७ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा प्रातः ७।२४ बजेतक	१३ दिसम्बर	× × × ×
द्वितीया,, ९।४६ बजेतक	शनि	आर्द्रा,, ७।१२ बजेतक	१४ "	भद्रा रात्रिमें ९।८ बजेसे, कर्कराशि रात्रिमें १२।२९ बजेसे।
तृतीया,, ८।२९ बजेतक	रवि	पुष्य रात्रिशेष ५।३८ बजेतक	१५ "	भद्रा दिनमें ८।२९ बजेतक, मूल रात्रिशेष, ५।३८ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिशेष ८।१८ बजे।
चतुर्थी प्रातः ६।५२ बजेतक	सोम	आश्लेषा रात्रिमें ४।२१ बजेतक	१६ "	सिंहराशि रात्रिमें ४।२१ बजेसे, धनुसंक्रान्ति रात्रिमें १२।३७ बजे, खरमासारम्भ।
षष्ठी रात्रिमें २।४७ बजेतक	मंगल	मघा रात्रिमें २।५३ बजेतक	१७ "	मूल रात्रिमें २।५३ बजेतक, भद्रा रात्रिमें २।४७ बजेसे।
सप्तमी" १२।२९ बजेतक	बुध	पू०फा०,, १।१७ बजेतक	१८ "	भद्रा दिनमें १।३८ बजेतक।
अष्टमी" १०।७ बजेतक	गुरु	उ०फा०,, ११।३६ बजेतक	१९ "	कन्याराशि प्रातः ६।५२ बजेसे।
नवमी" ७।४६ बजेतक	शुक्र	हस्त,, ९।५७ बजेतक	२० "	भद्रा रात्रिशेष ५।३९ बजेसे।
दशमी सायं ५।३२ बजेतक	शनि	चित्रा,, ८।२५ बजेतक	२१ "	भद्रा सायं ५।३२ बजेतक, तुलाराशि दिनमें ९।११ बजेसे।
एकादशी दिनमें ३।२८ बजेतक	रवि	स्वाती,, ७।३ बजेतक	२२ "	सफला एकादशीव्रत (सबका), सायन मकरका सूर्य रात्रिमें ७।१७ बजे।
द्वादशी" १।३९ बजेतक	सोम	विशाखा सायं ५।५८ बजेतक	२३ "	वृश्चिकराशि दिनमें १२।१५ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी,, १२।११ बजेतक	मंगल	अनुराधा,, ५।१४ बजेतक	२४ "	मूल सायं ५।१४ बजेसे, भद्रा दिनमें १२।११ बजेसे रात्रिमें ११।३८ बजेतक।
चतुर्दशी" ११।५ बजेतक	बुध	ज्येष्ठा,, ४।५२ बजेतक	२५ "	धनुराशि, सायं ४।५२ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या।
अमावस्या" १०।२७ बजेतक	गुरु	मूल,, ४।५७ बजेतक	२६ "	मूल सायं ४।५७ बजेतक, अमावस्या, सूर्यग्रहण प्रारम्भ दिनमें ८।० बजे, मोक्ष दिनमें १।३६ बजे।

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९-२०२०, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदादिनमें १०।१७ बजेतक	शुक्र	पू० षा० सायं ५।३३ बजेतक	२७ दिसम्बर	मकरराशि रात्रिमें ११।४९ बजेसे।
द्वितीया,, १०।३९ बजेतक	शनि	उ०षा० रात्रिमें ६।३९ बजेतक	२८ "	× × × ×
तृतीया,, ११।३५ बजेतक	रवि	श्रवण रात्रिमें ८।१३ बजेतक	२९ "	भद्रा रात्रिमें १२।१६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पू०षा० का सूर्य रात्रिमें १।३५ बजे।
चतुर्थी,, १२।५६ बजेतक	सोम	धनिष्ठा,, १०।१४ बजेतक	३० "	भद्रा दिनमें १२।५६ बजेतक, कुम्भराशि दिनमें ९।१३ बजेसे, पंचकारम्भ दिनमें ९।१३ बजे।
पंचमी,, २।४२ बजेतक	मंगल	शतभिषा,, १२।३५ बजेतक	३१ "	× × × ×
षष्ठी सायं ४।४३ बजेतक	बुध	पू०भा०,, ३।८ बजेतक	१ जनवरी	मीनराशि रात्रिमें ८।२९ बजेसे, सन् २०२० प्रारम्भ।
सप्तमी रात्रिमें ६।५३ बजेतक	गुरु	उ०भा० रात्रिशेष ५।४५ बजेतक	२ "	भद्रा रात्रिमें ६।५३ बजेसे, मूल रात्रिशेष ५।४५ बजेसे।
अष्टमी,, ९।० बजेतक	शुक्र	रेवती अहोरात्र	३ "	भद्रा प्रातः ७।५७ बजेतक।
नवमी,, १०।५५ बजेतक	शनि	रेवती दिनमें ८।१५ बजेतक	४ "	मेघराशि दिनमें ८।१५ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ८।१५ बजे।
दशमी,, १२।३० बजेतक	रवि	अश्वनी,, १०।३० बजेतक	५ "	मूल दिनमें १०।३० बजेतक।
एकादशी,, १।३५ बजेतक	सोम	भरणी,, १२।३० बजेतक	६ "	भद्रा दिनमें १।३ बजेसे रात्रिमें १।३५ बजेतक, वृषराशि रात्रिमें ६।४२ बजे, पुत्रदा एकादशीव्रत (सबका)।
द्वादशी,, २।१४ बजेतक	मंगल	कृत्तिका दिनमें १।४५ बजे	७ "	कूर्मद्वादशी।
त्रयोदशी,, २।२० बजेतक	बुध	रोहिणी,, २।४१ बजेतक	८ "	मिथुनराशि रात्रिमें २।५३ बजेसे, प्रदोषव्रत।
चतुर्दशी,, १।५५ बजेतक	गुरु	मृगशिरा,, ३।४ बजेतक	९ "	भद्रा रात्रिमें १।५५ बजेसे।
पूर्णिमा,, १।२ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा,, २।५९ बजेतक	१० "	भद्रा दिनमें १।२९ बजेतक, पौषी पूर्णिमा।

शास्त्रोंके अनुसार जन्म और मृत्युके समय असह्य कष्ट होता है, परंतु मुझे ऐसी अनुभूति नहीं हुई, इसे मैं महामृत्युंजयमन्त्रकी ही शक्ति मानता हूँ, जिसका मैं निरन्तर जप करता रहता हूँ।—अशोककुमार गुप्त

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सती सावित्री

श्रीमद्देवीभागवतके नवम स्कन्ध एवं महाभारतके वनपर्वमें वर्णित सती सावित्रीकी कथा भारतीय वाङ्मयकी अमर कथा है, जिसमें सावित्री अपने सतीत्वके बलपर मृत पतिका जीवन यमराजसे वापस प्राप्त कर लेती है। भारतीय जन-जीवनमें प्रायः ऐसे उदाहरण आते हैं, जब पत्नी स्वेच्छासे प्रार्थनापूर्वक अपना जीवन मृत्युको अर्पित कर देती है और बदलेमें मृत अथवा मृत-प्राय पतिको जीवित कर लेती है। यह घटना भी ऐसी ही कथा है।

यह घटना सन् १९७५की है। उन दिनों में दिल्ली विश्वविद्यालयमें रसायन विभागमें लेक्चरर था और सपत्नीक दिल्लीके मॉडल टाउन इलाकेमें किरायेके मकानमें रहता था। हमारे गाँवका परिवार बहुत बड़ा था। माँ और पिताजी परिवारके साथ गाँवमें ही रहते थे। गाँवमें माँके किंचित् अस्वस्थ होनेकी जानकारी हमें मिली। मेरी पत्नीने इच्छा जतायी कि मैं माँको दिल्ली ले आऊँ तो वे माँकी खूब सेवा करेंगी। उनका प्रस्ताव मुझे भी अच्छा लगा और मैं गाँव जाकर बीमार माँको दिल्ली ले आया। मैं तो दिनभर विश्वविद्यालयमें अपने शोध-कार्यमें व्यस्त रहता था तथा मेरी पत्नी जी-भरकर माँकी सेवा करती थी। माँ खूब स्वस्थ हो गयीं। अब उन्हें चलनेमें छड़ीके सहारेकी जरूरत नहीं पड़ती थी और तीसरी मंजिलके हमारे आवाससे वे स्वयं ही बिना किसी सहारेके सीढ़ियाँ उतरकर मेरी पत्नीके साथ बाजारतक जाने लगी थीं।

मेरे गाँवके मेरे बचपनके एक मित्र दिल्ली आये। वे हम लोगोंसे मिलने हमारे आवास आ गये। माँने उनसे घर-गाँवका समाचार पूछा। उन्होंने सारा समाचार बताते-बताते मेरे पिताजीके किंचित् अस्वस्थ होनेकी बात भी बता दी। माँके माथेपर चिन्ताकी लकीरें खिंच गयीं। माँने मेरी पत्नीसे कहा—‘बहू! मेरे जीवनको धिक्कार है। मैं यहाँ अच्छा-अच्छा खा-पहन रही हूँ और वहाँ तुम्हारे बाबूजी बीमार चल रहे हैं। पता नहीं, उनकी ठीकसे सेवा भी हो रही है या नहीं। भैयासे कहो, मुझे एक बार गाँव

पहुँचा दें। मैं थोड़े दिन तुम्हारे बाबूजीकी सेवा करके उन्हें साथ लेकर फिर आ जाऊँगी।’

शामको जब मैं विश्वविद्यालयसे आया तो यह बात मेरे पासतक पहुँची। मैंने नाराज होकर कहा—‘माँ कोई डॉक्टर नहीं हैं। वहाँपर भैया लोग पिताजीकी दवा करा रहे होंगे, वे जल्दी ठीक हो जायँगे। मेरा बार-बार दिल्लीसे इलाहाबाद और इलाहाबादसे दिल्ली आना-जाना नहीं हो सकता।’

यह सुनकर माँ उदास हो गयीं और पिताजीके स्वस्थ होनेके लिये मन-ही-मन भगवान्को सुमिरने लगीं। संयोगसे तीसरे ही दिन मेरा एक भतीजा उमेश किसी कामसे दिल्ली आ गया। माँ बहुत खुश हो गयीं तथा मुझसे बोलीं—‘भैया! अब तुम्हें नहीं जाना पड़ेगा। मैं उमेशके साथ गाँव चली जाऊँगी?’

मैंने खुशीसे सहमति दे दी और माँके गाँव जानेकी तैयारियाँ होने लगीं। मेरी पत्नीने बाजार जाकर माँके लिये एक नया बक्सा खरीदा। माँके लिये कई जोड़े कपड़े खरीदकर उस बक्सेमें रखा। उनके चाय पीनेके लिये एक सेट कप-प्लेट, एक किलो चायकी पत्तीका पैकेट तथा दो किलो चीनी आदि सामान भी उसी बक्सेमें रख दिया। पत्नीने माँके बाल गूँथकर उन्हें आलता-महावर तथा नेल-पालिश आदिसे सजाया। दिल्ली-हावड़ा जनता एक्सप्रेसमें दो सीटें आरक्षित करा दी गयीं। हम दोनों माँको छोड़ने स्टेशन गये।

माँ हम लोगोंके साथ छः महीनेतक रही थीं। हमारी पत्नीके प्रति उनके मनमें बहुत प्रेम भर गया था। यों भी मैं उनका सबसे छोटा बेटा था और हम लोगोंके कोई सन्तान भी नहीं थी, इसलिये भी माँ हम लोगोंको छोटे बच्चे—जैसा मानकर प्रेम करती थीं। डिब्बेमें बैठे—बैठे माँ भी रो रही थीं तथा डिब्बेकी खिड़कीके पास खड़े होकर हम दोनों भी रो रहे थे। माँने अपनी बहूको ढाँढ़स बँधायी—‘रो मत। मैं गाँवमें १५ दिनसे ज्यादा नहीं रहूँगी और तुम्हारे बाबूजीको लेकर जल्दी ही फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगी।’

घरके लोगोंने बताया कि ‘माँ जैसे ही घर पहुँचीं बीमार पिताजीकी खाटके पास गयीं तथा हाथ जोड़कर भगवान्की ओर निहारा, प्रणाम किया और पिताजीकी खाटके सात चक्कर लगाये। बाहर आकर गंगाजी गयीं। गंगा-स्नान किया, एक लोटा गंगाजल लाकर नीमवाली देवीमाँको चढ़ाया और फिर पिताजीकी खाटके पास आकर बोलीं—‘हे देवी माँ! यह क्या हो रहा है, ऐसा

नहीं होना चाहिये, मेरे सामने यह चले जायँगे, यह कैसे होगा ? भगवान् ! इनका सारा मर्ज हमें दे दो, इन्हें ठीक कर दो, इनकी जगह हमें ले लो ।’

पिताजी उठकर खाटपर बैठ गये। माँकी ओर निहारे, मुसकराये और बोले—‘तुम तो बहुत सजधजकर आयी हो, ऐसा तो गवनेमें भी नहीं सजी थीं। लगता है छोटे बहू-बेटेने खूब सेवा की है।’ माँने कोई उत्तर नहीं दिया। वह तो मन-ही-मन कुछ और ही प्रार्थना कर रही थीं।

माँको बुखार चढ़ आया। पिताजीकी खाटके बगलमें ही जमीनपर माँका बिस्तर लगा। पिताजी अच्छे होने लगे, माँका बुखार बढ़ने लगा। कोई दवा काम नहीं आयी। संयोगसे मझले भैया कलकत्तेसे घर आये थे। वे कलकत्ता लौटनेके लिये माँसे अनुमति माँग रहे थे। माँने उन्हें एक दिन और रुकनेको कहा और अगले दिन शरीर छोड़ दिया। माँके दोनों बड़े बेटे उनकी आँखोंके सामने थे और दोनों छोटे परदेशमें थे। जो कुछ हो रहा था, वह माँको दीख रहा था। उनकी अपनी मरजीसे हो रहा था। पिताको पूर्ण स्वस्थ हुआ जानकर माँ अति प्रसन्न भावसे ऊपर गयीं।

पूरा गाँव उमड़ पड़ा था मेरी माँके अन्तिम दर्शनको। सभीके आँखोंमें आँसू थे और होठोंपर ये शब्द—‘वाह री सावित्री, धन्य हो।’

वैसे तो मेरी माँका नाम अनूपा था, अनूपा देवी। पर ऊपर जाते-जाते वे सावित्री बन गयी थीं। अपने पतिको मौतके मुँहसे बाहर खींच लानेवाली सती सावित्री।—प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय

(२)

कर्तव्यपरायणता

उन दिनों उज्जैनमें महाराज सज्जनसिंहका राज्य था। महाराजा बड़े ही न्यायप्रिय एवं प्रजारंजक थे। चारों ओर उनकी ख्याति थी।

रियासतके एक विशेष कार्यालयमें श्रीश्रीनिवास नामके एक वरिष्ठ अधिकारी थे। वे ईमानदारी और सज्जनताके लिये प्रख्यात थे। स्वभाव उनका बड़ा सरल था। आजके जीवनमें सरलता गुण नहीं, दोष समझा जाता है। कार्यालयके अफसर बड़े ही चतुर और

—प्रो० अनूपकमार गव्खड

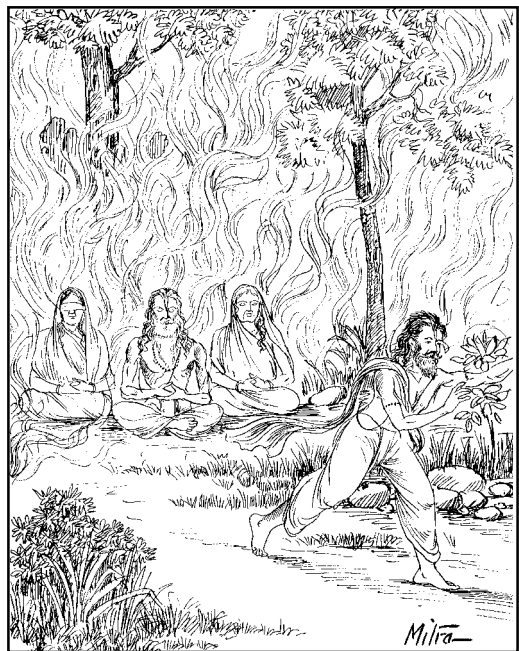
मनन करने योग्य

कुन्तीद्वारा जेठ-जेठानीकी आदर्श सेवा

कुन्तीदेवीका जीवन शुरूसे अन्ततक बड़ा ही त्यागपूर्ण, तपस्यामय और अनासक्त था। पाण्डवोंके वनवास एवं अज्ञातवासके समय ये उनसे अलग हस्तिनापुरमें ही रहीं और वहींसे इन्होंने अपने पुत्रोंके लिये अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा क्षत्रियधर्मपर डटे रहनेका सन्देश भेजा। इन्होंने विदुला और संजयका दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मिक शब्दोंमें उन्हें कहला भेजा कि 'पुत्रो! जिस कार्यके लिये क्षत्राणियाँ पुत्र उत्पन्न करती हैं, उस कार्यके करनेका समय आ गया है। इस समय तुमलोग मेरे दूधको न लजाना।' महाभारत-युद्धके समय भी ये वहीं रहीं और युद्ध-समाप्तिके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट्के पदपर अभिषिक्त हुए और इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय इन्होंने पुत्रवियोगसे दुखी अपने जेठ-जेठानीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमानरहित होकर उनकी सेवामें अपना समय बिताने लगीं। यहाँतक कि जब वे दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर वन जाने लगे, उस समय ये चुपचाप उनके संग हो लीं और युधिष्ठिर आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुईं। जीवनभर दुःख और क्लेश भोगनेके बाद जब सुखके दिन आये, उस समय भी सांसारिक सुखभोगको टुकराकर स्वेच्छासे त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना कुन्तीदेवी-जैसी पवित्र आत्माका ही काम था। जिन जेठ-जेठानी और उनके पुत्रों तथा आत्मीयजनोंसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन जेठ-जेठानीके लिये इतना त्याग संसारमें कहाँ देखनेको मिलता है।

कुन्तीदेवीको वन जाते समय भीमसेनने समझाया कि 'माता! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर नाहक हमलोगोंके द्वारा इतना नर-संहार क्यों करवाया? हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके बाद हमें वनसे नगरमें क्यों लायीं?' उस समय कुन्तीदेवीने

उन्हें जो उत्तर दिया, वह हृदयमें अंकित करनेयोग्य है। वे बोलीं—'बेटा! तुमलोग कायर बनकर हाथ-पर-हाथ रखकर न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थको त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिये हाथ न धो बैठो—इसीलिये मैंने तुमलोगोंको युद्धके लिये उकसाया था, अपने सुखकी इच्छासे ऐसा नहीं किया था। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मैं तो अब तपके द्वारा पतिलोकमें जाना चाहती हूँ। इसलिये अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर मैं अपना शेष जीवन तपमें ही बिताऊँगी। तुमलोग सुखपूर्वक घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने परिजनोंको सुख दो।' इस प्रकार अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ वनमें चली गयीं और अन्त-समयतक उनकी



सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति शरीर छोड़ दिया। कुन्तीदेवी-जैसी आदर्श महिलाएँ संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलेंगी।

श्रीगीता-जयन्ती [८ दिसम्बर, २०१९ ई०]

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ (गीता ६।३०-३१)

‘जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।’

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दुःखको अपना सुख-दुःख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरुढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ ‘श्रीमद्भगवद्गीता’ ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), रविवार, दिनाङ्क ८ दिसम्बर, २०१९ ई० को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अड़चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति) के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

—सम्पादक

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—नित्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।)

व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं।

गीता-दैनन्दिनी (सन् २०२०) के सभी संस्करण अब उपलब्ध

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि।

पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ८५

बँगला (कोड 1489), ओड़िआ (कोड 1644), तेलुगु (कोड 1714) प्रत्येकका मूल्य ₹ ८५

पुस्तकाकार—सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹ ७०

पॉकेट साइज—सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)—गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹ ४०

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

पाठकोंसे आवश्यक निवेदन

जनवरी २०२० का विशेषाङ्क 'बोधकथा-अङ्क'-जनवरीके प्रथम सप्ताहसे ही भेजनेका प्रयास है। रजिस्ट्रीसे विशेषाङ्क प्राप्त करनेके लिये सदस्यता-शुल्क यथाशीघ्र भेजें।

गीताप्रेसकी निजी दूकानोंपर भी सदस्यता-शुल्क छपी रसीद प्राप्त करके जमा कर सकते हैं। जिन सदस्योंका सदस्यता-शुल्क दिसम्बरतक प्राप्त नहीं होगा उन्हें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क भेजा जायगा।

कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। कुछ वर्षोंसे मासिक अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये **वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹ २५० के अतिरिक्त ₹ २०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रजिस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है।** कल्याणके विषयमें जानकारीके लिये 09235400242 अथवा 09235400244 पर प्रत्येक कार्य-दिवसमें 9:30 बजेसे 12:30 बजेतक एवं 2:00 बजेसे 5:00 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

वार्षिक-शुल्क—₹२५०। पंचवर्षीय-शुल्क—₹१२५०

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर Kalyan option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५

श्रीराधा-माधव अङ्क अब ग्रन्थरूपमें भी उपलब्ध

सुहृद् पाठकों—श्रद्धालु भक्तोंको श्रीराधामाधवकी मधुरातिमधुर लीलाओंका दर्शन कराने हेतु जनवरी 2019 के विशेषांकमें श्रीराधा-माधव अङ्कका प्रकाशन किया गया था, इसमें मुख्य रूपसे श्रीराधामाधवकी उपासनाके विविधरूप, श्यामसुन्दर एवं राधारानीकी अन्तरंग तथा बाह्यलीलाओंके सहचर, भक्तवृन्दोंकी रोचक कथाओंकी प्राथमिकता है जो साधकों तथा आस्तिकजनोंके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है। **अब यह विशेषांक बिना मासिक अंकोंके अलगसे भी ग्रन्थरूपमें उपलब्ध है। (कोड 2235), मूल्य ₹ १४०**

श्रीमद्भागवतकथा आदि शुभ अवसरोंपर प्रसादस्वरूप वितरित करनेके लिये एक साथ १०० प्रति लेनेपर विशेष छूट उपलब्ध है। विशेष छूट पानेके लिये मो०नं० 8545857113 पर संपर्क करना चाहिये।

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹
	नेपाली							
2241	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य-भक्ति-सूत्र [सरल भाषानुवादसहित]	५	2243	प्रश्नोत्तरी (स्वामिश्रीशंकराचार्यरचित) पॉकेट साइज	४	2238	भगवान ओ तारँ भक्ति	१५
2242	चेतावनी एवं सामयिक चेतावनी	५	2246	श्रीमद्भगवद्गीता पदच्छेद अन्वय साधारण भाषाटीकासहित	६५	2247	वास्तविक सुख	१२
2244	संसारको असर कसरी छुट्ट?	५		बँगला			असमिया	
2245	अष्टावक्रगीता (श्लोकार्थसहित)	१०	2237	भगवान ओ भक्त आलेख्य	७०	2239	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	६
						2240	प्रेरक कहानियाँ	१२

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।

Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

gitapressbookshop.in से गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online कूरियरसे/डाकसे मँगवायें।